स्वाध्याय सुधा

स्वाध्याय सुधा

कॉपीराइट © १९६८, १९७२, १९७४, १९८०, १९८७, १९९०, १९९४ गुरुदेव सिद्धपीठ®
[भारत, नेपाल, भूटान और श्रीलंका के लिए]। सर्वाधिकार सुरक्षित।

कॉपीराइट © १९६८, १९७२, १९७४, १९८०, १९८७, १९९०, १९९४ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउण्डेशन® न्यूयॉर्क, यू. एस. ए. [सभी अन्य देशों के लिए]। सर्वाधिकार सुरक्षित।

गुरुदेव सिद्धपीठ, गुरुदेव सिद्धपीठ का पंजीकृत व्यापार चिह्न है।

[स्वामी] मुक्तानन्द, [स्वामी] चिद्विलासानन्द, गुरुमाई, कलश चिह्न और सिद्धयोग अनेक देशों में एस. वाय. डी. ए. फ़ाउण्डेशन® के पंजीकृत व्यापार चिह्न हैं।

गुरुदेव सिद्धपीठ, गणेशपुरी, जि. ठाणे, महाराष्ट्र-४०१ २०६, की लिखित आज्ञा के बिना इस पुस्तक का कोई भी अंश, किसी भी रूप में अथवा किसी भी विधि से, चाहे वह यान्त्रिक हो या इलेक्ट्रॉनिक, जैसे फ़ोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग, सूचना-संग्रह और पुनः प्राप्ति की प्रणाली द्वारा न तो पुनर्मुद्रित किया जाए और न ही सम्प्रेषित किया जाए।

१९९४ के हिन्दी संस्करण का पाँचवा पुनर्मुद्रण २०१३ में कॉपीराइट धारक से प्राप्त लाइसैंस के अन्तर्गत, चित्शक्ति® पब्लिकेशन्स [चित्शक्ति ट्रस्ट का एक प्रभाग], चेन्नई द्वारा प्रकाशित।

मुद्रक : पार्कसन्स ग्राफ़िक्स, मुम्बई।

Copyright © 1968, 1972, 1974, 1980, 1987, 1990, 1994 Gurudev Siddha Peeth®, Ganeshpuri, India (For India, Nepal, Bhutan and Sri Lanka). All rights reserved.

Copyright © 1968, 1972, 1974, 1980, 1987, 1990, 1994 SYDA Foundation®, New York, U.S.A. (For all other countries). All rights reserved.

Fifth impression of 1994 edition published in 2013 by Chitshakti® Publications (a division of Chitshakti Trust), Chennai, under license from the copyright holder.

Printer: Parksons Graphics, Mumbai.

स्वाध्याय सुधा

CSP

सिद्धयोग™ ध्यान प्रकाशन
प्रकाशक : चित्शक्ति® पब्लिकेशन्स, चेन्नई

एस. वाय. डी. ए. फ़ाउण्डेशन—संस्था परिचय

एस. वाय. डी. ए. फ़ाउण्डेशन एक लाभ निरपेक्ष संस्था है जो सिद्धयोग की शिक्षाओं को सुरक्षित रखती है, उनका परिरक्षण करती है और उन्हें प्रसारित करने में मदद करती है। एस. वाय. डी. ए. फ़ाउण्डेशन सिद्धयोग पथ के कार्यों की लोकहितकारी अभिव्यक्तियों का दिशा-निर्देशन भी करता है। इनमें सम्मिलित हैं, 'प्रसाद' परियोजना, जो बच्चों, परिवारों व ज़रूरतमन्द समुदायों के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा और दीर्घकालीन विकास कार्यक्रमों की व्यवस्था करती है; और 'मुक्तबोध भारतीय प्राच्य विद्या शोध संस्थान', जो भारत के धर्मशास्त्रों की विरासत के परिरक्षण में मदद करता है।

अनुक्रमणिका

१.	सिद्धयोग-परम्परा	७
२.	स्वाध्याय योग	१४
	प्रथम खण्ड	
३.	श्रीगुरु	२९
४.	श्रीगुरुपादुकापञ्चकम्	३०
५.	श्रीगुरुगीता	३२
६.	सद्गुरु की आरती	७६
७.	त्वमेव माता	७८
८.	श्रीविष्णुसहस्रनाम	८०
९.	सायंप्रातः की आरती	१२८
१०.	उपनिषद् मन्त्र	१४०
११.	श्रीशिवमहिम्नः स्तोत्रम्	१४५
१२.	श्रीशिवमानसपूजा	१६४
१३.	गुरुदेव हमारा प्यारा	१६७
१४.	ज्योत से ज्योत जगाओ	१६८
१५.	शिव आरती	१६९
१६.	भजन एवं मन्त्र	१७४

द्वितीय खण्ड

१.	चन्द्रशेखराष्टकम्	१८३
२.	द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम्	१८८
३.	चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्	१९२
४.	श्रीअवधूतस्तोत्रम्	१९८
५.	अन्नपूर्णास्तोत्रम्	२०२
६.	कुण्डलिनीस्तवः	२०८
७.	निर्वाणषट्कम्	२१३
८.	आरती लीजो	२१५
९.	प्रार्थना	२१६
१०.	श्रीमहालक्ष्म्यष्टकम् स्तोत्रम्	२१८
११.	पसायदान	२२१

सिद्धयोग - परम्परा

झिलमिलाते मणिदीपों की एक लड़ी है जो पुरातन काल से अब तक अज्ञान और मोह के अन्धकार को परास्त करती आयी है। वे मणिदीप क्या हैं?

वे अनन्त कोटि सूर्यों की प्रभावाले, सर्वज्ञ, सर्वक्षम योगी हैं जो सिद्ध कहलाते हैं।

उनकी एक परम्परा है, एक भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी धारा है जो आदि शिव से आरम्भ हो कर अनेक सिद्धों में प्रवाहित होती हुई आज भी उतनी ही वरदायिनी है। सिद्धों की इस अखण्ड परम्परा के अन्तर्गत श्रीगुरु अपने शिष्य को इस परम्परा की शक्ति व अधिकार सौंपते आये हैं।

एक दिन एक आत्मतृप्त, आत्ममग्न सिद्ध महाराष्ट्र के एक गाँव में आ पहुँचे। साँपों, झाड़ियों और दलदल से भरे गणेशपुरी नामक गाँव में उन्होंने आसन लगाया और कुछ ही दिनों में उस धरती को जैसे पारसमणि ने छू लिया। जो भी उन महान अवधूत नित्यानन्द के समक्ष आता, उसकी समस्याएँ समाधान में बदल जातीं; इच्छाएँ पूर्ण हो जातीं, मन शान्त हो कर भगवान का हो जाता।

भगवान नित्यानन्द के दर्शनार्थ आनेवालों की अन्तहीन पंक्तियों में एक दिन एक संन्यासी स्वामी मुक्तानन्द भी थे। उनका भगवान नित्यानन्द की शरण में आना, भारत ही नहीं, सारे संसार के आध्यात्मिक इतिहास का एक नया स्वर्णिम पृष्ठ था।

स्वामी मुक्तानन्द का जन्म दक्षिण भारत के मंगलौर नगर के पास धर्मस्थल गाँव में सन् १९०८ में हुआ। शैशवकाल से ही उन्हें सन्तों के चरित्र सुनने की प्यास थी, उनके सत्संग की लालसा थी।

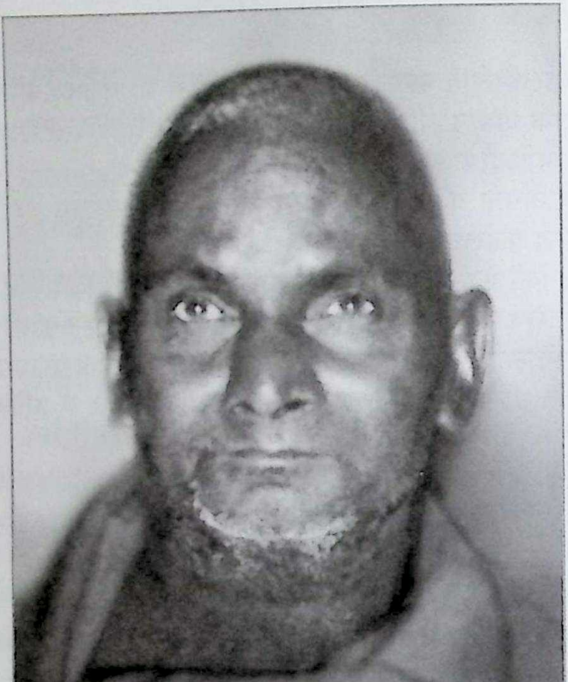

भगवान नित्यानन्द

उनका परिवार समृद्ध व प्रेम से भरपूर था किन्तु वह उनकी दृष्टि से ओझल होने लगा। सुख और स्नेह के बन्धन ढीले हो कर गिर गये। उन्हें एक ही लगन थी भगवान को पाना है, अतः पन्द्रह वर्ष की अवस्था में उन्होंने घर त्याग दिया और अपनी ही खोज में निकल पड़े।

पहला पड़ाव सिद्धारूढ़ स्वामी का आश्रम था जहाँ उन्होंने संन्यास एवं 'स्वामी मुक्तानन्द' नाम ग्रहण किया। अगले तीस वर्षों तक वे सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करते रहे और साठ से अधिक सन्तों से मिले। वे उनकी आत्म-शुद्धि, कठोर तपस्या व परीक्षा के दिन थे। आत्मसाक्षात्कार की लगन दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गयी।

यात्रा के अन्तिम चरण में स्वर्ण-सा, ताप-तप-पावित हृदय लिये स्वामी मुक्तानन्द गणेशपुरी में भगवान नित्यानन्द की शरण में आये जिनका क्षणिक दर्शन वे एक बार शैशवकाल में पा चुके थे।

सिद्धयोग में सिद्धगुरु एक दृष्टि, शब्द, स्पर्श या संकल्प के द्वारा शिष्य की सुप्त कुण्डलिनी-शक्ति को जगाने में कुशल होते हैं। इसको 'शक्तिपात' कहते हैं जिसके पश्चात् इस महायोग की प्रक्रिया स्वतः आरम्भ हो जाती है जिसका मूल गुरुकृपा है।

भगवान नित्यानन्द की अनुग्रहकारिणी शक्ति ने स्वामी मुक्तानन्द पर दिव्य शक्तिपात किया। बाहरी यात्राएँ समाप्त हो गयीं और वे एक आन्तरिक दिव्य यात्रा पर चल पड़े। वर्षों तक अनेक अलौकिक अनुभव और अकल्पनीय, इन्द्रियातीत अनुभूतियाँ उन्हें आत्मसाक्षात्कार के द्वार पर ले आयीं और सन् १९५६ में उन्होंने साधना का अन्तिम चरण पूरा किया। दूर, अपने कक्ष में बैठे, सर्वज्ञ, भगवान नित्यानन्द हर्षातिरेक में उठ कर नाचने लगे, "मुक्तानन्द परब्रह्म हो गया!" सन् १९६१ में महासमाधि लेने से पहले भगवान नित्यानन्द ने स्वामी मुक्तानन्द को अपनी महान विभूतिपूर्ण आध्यात्मिक शक्ति एवं सिद्ध परम्परा का अधिकार प्रदान किया।

गणेशपुरी आश्रम का शिलान्यास हो गया। देश-विदेश के दर्शनार्थी जिज्ञासुओं की पंक्तियाँ मालाएँ बन गयीं। सन् १९७० में बाबा मुक्तानन्द ने पहली विदेश यात्रा की और एक महान ध्यान-क्रान्ति का सूत्रपात किया। वे एक परम शक्तिशाली आध्यात्मिक चुम्बक थे। भूमण्डल के सर्वोपरि गुरु होने का लेखा जिनके मस्तक पर पहले से लिखा था, उन्हें कुछ विशेष प्रयत्न नहीं करना था।

बाबा मुक्तानन्द अतुलनीय साधना के धनी थे। साथ ही उन्हें गुरु के आदेशों की शक्ति प्राप्त थी। उनका प्रत्येक शब्द, विचार और कर्म गुरु की आज्ञा का पालन था। एक सार्वभौमिक ध्यान-क्रान्ति का चक्र चल पड़ा। अनेकों ध्यान-केन्द्रों की स्थापना हो गयी। विश्व का एक नया आध्यात्मिक चित्र बन रहा था।

उधर, विधाता गणेशपुरी आश्रम में भविष्य की रोमांचकारी योजनाओं में व्यस्त था और कहीं कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण घट रहा था। पाँच वर्ष की अवस्था से एक तेजस्वी और मेधावी कन्या आश्रम आती थी और बाबा मुक्तानन्द के चरणों में बैठी रहती थी।

वह बाबा मुक्तानन्द की एक अलौकिक आध्यात्मिक कृति थी। उसके विषय में एक बार बाबाजी ने कहा, "यह एक ज्योति है जो एक दिन सारे संसार को प्रकाशित कर देगी।"

उस परम सौभाग्यशाली शिष्या को अपने परम प्रिय गुरु का पूर्ण प्रेम मिला, मार्ग निर्देशन मिला और पूर्ण अनुग्रह प्राप्त हुआ। बाबा मुक्तानन्द जितने प्रेमपूर्ण, मृदुल एवं कोमल थे—अनुशासन, आज्ञापालन व दैनिक अभ्यासों के प्रति वे उतने ही कठोर व चैतन्य थे। महान गुरु की महान शिष्या ने सभी कठिन परीक्षाओं को पार करते हुए, अपने तप, गुरुप्रेम व लगन की शक्ति से पूर्णता की स्थिति प्राप्त कर ली। सन् १९८२ में महासमाधि लेने से कुछ समय पूर्व बाबा मुक्तानन्द ने विधिवत् संस्कार सहित अपनी उस शिष्या को

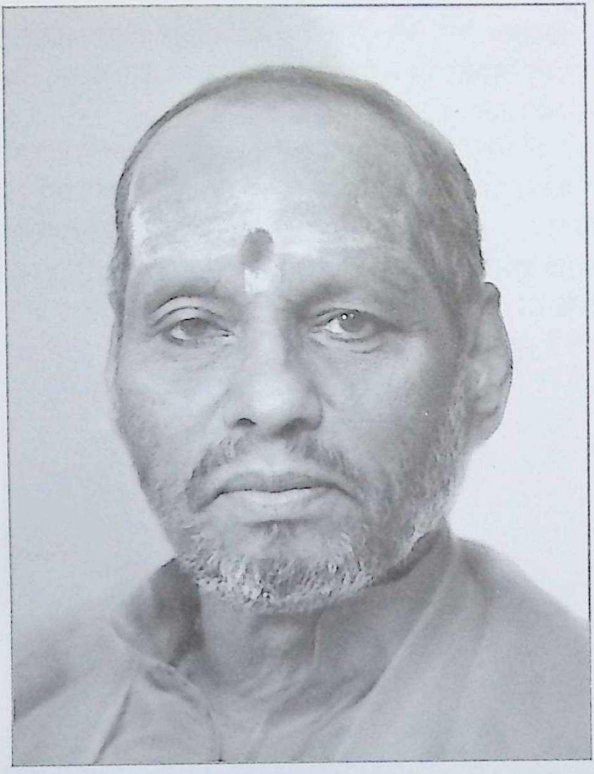

स्वामी मुक्तानन्द

"स्वामी चिद्विलासानन्द" के नाम से विभूषित किया। तत्पश्चात् सिद्ध परम्परा की सम्पूर्ण शक्ति व अधिकार उन्हें प्रदान किया।

२ अक्टूबर, सन् १९८२ को बाबा मुक्तानन्द के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् आदिशक्तिरूपा गुरुमाई चिद्विलासानन्द की बहुमुखी रचनात्मक शक्ति द्रुतगति से सक्रिय हो उठी।

गुरुमाई जिस ध्यान-क्रान्ति की गुरु-प्रदत्त ध्वजा ले कर बढ़ रही हैं वह शान्त क्रान्ति है, आन्तरिक खोज है, गुरु-कृपा की शक्ति से अपने भगवान को, अपने को, अपने में पा लेना है। इस संघर्षशील युग में गुरुमाई एक दृढ़ आलम्बन हैं, गरजते हुए जीवन-सागर के मन्थन में सशक्त पोत हैं; वे ज्ञानगंगा हैं ज्ञान-पिपासुओं के लिए और मुक्ति का द्वार हैं मुमुक्षुओं के लिए।

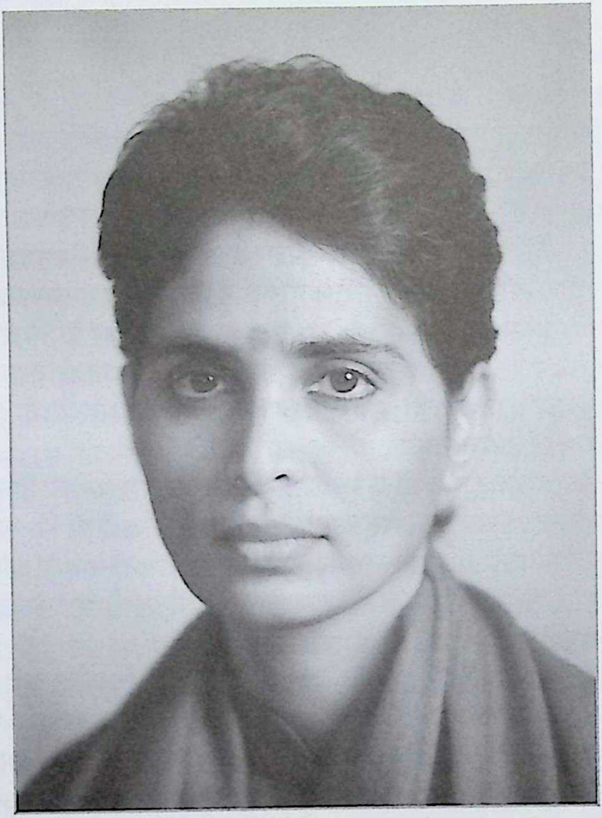

गुरुमाई चिद्विलासानन्द

स्वाध्याय योग

स्वाध्याय में वस्तुतः स्वात्मा का ही अध्ययन होता है। श्रद्धा, प्रेम, भावना के साथ परम उत्साह से किया जानेवाला स्वाध्याय इच्छित फल प्रदान करनेवाला होता है। अनादिकाल से ले कर अब तक महापुरुष, ज्ञानी, मार्गदर्शक, आचार्य, सिद्ध आदि स्वाध्याय की उपासना करते आये हैं। स्वाध्याय परम सम्माननीय है और सत्कार से नित्यप्रति नियमित समयानुसारेण पूजित है। स्वाध्याय मानवमात्र की एक अति उत्तम योगोपासना है, जो अन्तःकरण को पवित्र बनाने में पूर्ण सामर्थ्यवान् है। पूर्वकालीन अत्यन्त सम्माननीय, महान शक्तिशाली, सामर्थ्यशाली, महापुरुषों ने भी स्वाध्याय का आचार पाला और अन्य सबको भी स्वाध्याय करने के लिए प्रेरित किया।

"स्वाध्यायान्मा प्रमदः" स्वाध्याय में प्रमाद मत करो, स्वाध्याय को भूलो नहीं। सूर्य-चन्द्रवत् स्वाध्याय करो, ऐसा ऋषियों का कहना है। पूज्य महात्मा गांधीजी प्रार्थना अथवा स्वाध्याय नियमपूर्वक बड़ी सावधानी से अचूक करते थे। स्वाध्याय सर्वांगपूर्ण, पूर्णफलदायी एक महायोग है।

इसलिए आश्रम में प्रतिदिन प्रातः मन्त्र द्वारा नियमित आरती, तदुपरान्त श्रीगुरुगीता का पाठ तथा रुद्रम्, मध्याह्न पंचाक्षरी मन्त्र की धुन, अपराह्न को विष्णुसहस्रनाम, सन्ध्याकाल में, पुनः आरती एवं रात्रि के प्रहर में शिवमहिम्न स्तोत्र पाठ तथा नाम-संकीर्तन आदि होते हैं। उक्त कार्यक्रम नियमित समय में आदर-सम्मानपूर्वक संगीत के साथ होते रहते हैं।

नामस्मरण का बड़ा महत्त्व है :

अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसंततिम्।
स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मङ्गलं परम्॥
अतिकल्याणरूपत्वान्नित्यकल्याणसंश्रयात्।
स्मर्तॄणां वरदत्वाच्च ब्रह्म तन्मङ्गलं विदुः॥

अर्थात् "जो स्मरणमात्र से पुरुषों के अशुभ-अमंगल दूर कर देता है और कल्याण परम्परा का विस्तार करता है, वह ब्रह्म परम मंगलरूप है। अत्यन्त कल्याणरूप होने से, नित्यकल्याणधाम होने से और स्मरण करनेवालों को वर देनेवाला होने से तत्त्वज्ञानी उस ब्रह्म को मंगलरूप जानते हैं।"

भगवान का नाम अमृतमय सुखरूप है। स्वाध्याय करते-करते मनोवृत्ति मन्त्रमय बन जाती है, सहज ही एकाग्रता होने लगती है, हृदय अपने लक्ष्य में स्थिर हो जाता है और उस मन्त्र के अर्थरूप आनन्दरस का आस्वादन करने लगता है। हृदय की शुष्कता नष्ट हो जाती है, चित्त की चिन्ता मिट जाती है, अप्राप्ति की, जलन की अग्नि बुझ जाती है, स्वभावतः एक भावमय प्रेमसमाधि का उदय हो जाता है और अपने आप में तृप्ति की अनुभूति होने लगती है। उससे पता लगता है कि मानव के अन्दर महान शक्ति का एक गुण है, प्रेम का निर्झर है, धैर्य का महान मज़बूत किला है, भगवान का देदीप्यमान मन्दिर है और तब वह शान्ति, तृप्ति और पूर्णता की अनुभूति से मस्त हो जाता है। यही स्वाध्याय है।

स्वाध्याय के सन्दर्भ में एक पक्षी की याद आती है जिसे कौडिल्ला अथवा "किंगफिशर" कहते हैं। एक ही काल में ध्यान, खाना और स्नान करनेवाला एक ही पक्षी जगत में है। वह पक्षी नदी-तीर पर एक झाड़ के कोटर में शान्त-स्थिर बैठ कर नदी के पानी में इधर-उधर तैरनेवाली छोटी-सी मछली के ध्यान में रहता है। मछली को देखते ही पानी में कूद पड़ता है। मछली पकड़ कर खाना, पानी में डूब कर स्नान करना,

एकाग्रचित्त हो मछली का ध्यान करना—इस प्रकार एक ही काल में खाना, स्नान और ध्यान क्या पक्षी की होशियारी, महत्ता नहीं है?

नारायण नाम-संकीर्तन का महत्त्व जानने के लिए नारायण ही बनना पड़ेगा। चैतन्य महाप्रभु की 'चरितावली' में नाम की महिमा का पता लगता है। हरिदासजी नाम-माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहते हैं :

जपतो हरिनामानि स्थाने शतगुणाधिकः।
आत्मानं च पुनात्युच्चैर्जपन् श्रोतॄन् पुनाति च॥

भगवन्नाम का जप तो सर्वकाल में, सर्वस्थानों में, सबके सामने और सब परिस्थितियों में किया जाता है। अन्य मन्त्रों को मौनरूप से जपने का माहात्म्य भले ही हो, किन्तु भगवन्नाम का माहात्म्य तो ज़ोरों से उच्चारण करने में ही बताया गया है। भगवन्नाम के उच्चारण में जितना अधिक घोष होगा उसका उतना ही अधिक माहात्म्य होगा, क्योंकि धीरे-धीरे जप करनेवाला अकेला अपने आपको ही पावन बना सकता है, किन्तु उच्च स्वर से संकीर्तन करनेवाला तो सुननेवाले जड़-चेतन सभी को पावन बनाता है।

स्वाध्याय का आरम्भ इस मन्त्र से होता है :

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्तये।
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे॥

यह मन्त्र जिसे "ॐ नमः शिवाय" कह कर पुकारा जाता है, स्मरण किया जाता है, अथवा जिससे मिलने की, बात करने की भाषा भी "ॐ नमः शिवाय" है—क्या है? कौन है जिससे सम्भाषण करने के लिए, जिसका स्तवन करने के लिए सृष्टि के आरम्भ से ले कर अब तक अनेक काव्य रचे गये, अनेक स्तोत्रों का प्रादुर्भाव हुआ? शेषनाग अपने सहस्र सिरों को उठाये अपनी सहस्र जिह्वाओं से जिसका गान

करता है, सरस्वती वक्ष पर वीणा धरे हर पल जिसकी स्तुति करती हैं, वह शिवरूप परम तत्त्व क्या है? हम जिनकी "ॐ नमः शिवाय" कह कर वन्दना करते हैं, वे गुरुरूप सर्वात्म हैं, सच्चिदानन्दमूर्ति हैं। सत्-चित्-आनन्द उनका मूर्त स्वरूप है। "सत्" उसका नाम है जो सर्व देश, सर्व काल और सर्व वस्तुओं में समान रूप से व्याप्त है। आत्मतत्त्व सर्व वस्तुओं में पूर्ण व्यापक है, वह सबका आधार है। जो कोई भी वस्तु भासमान होती है, वह परमात्मा के "सत्" में आधारित है। बिना आधार के कोई भी वस्तु अस्तित्व में नहीं है। जैसे समस्त आभूषणों का आधार सुवर्ण है, वस्त्रादि का आधार कपास है वैसे ही परमात्मा समस्त विश्वाडम्बर का आधार है। वह आत्मतत्त्व शिवात्मगुरु जगत के उदय, स्थिति और लय का परम आधार है। परमात्मा चित्-रूप है। चित् अर्थात् चिति सर्वदा, सर्वकाल, सर्वदेश में सर्व वस्तुओं को "इदम्" कह कर प्रकाशित करती है। वस्तुतः सर्व देश, काल, पदार्थ में भासनेवाला तत्त्व चिति ही है। यह चिति-तत्त्व अग्नि का प्रकाश, सूर्य-चन्द्र का प्रकाश, जगत की समस्त ज्योतियों की आधारभूत ज्योत होने से "चिति" कहलाता है।

सच्चिदानन्द के आनन्दरूप तत्त्व से ही सर्व जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय है। वस्तुतः विचार करके देखें तो जगत के समस्त व्यवहार आनन्द के द्योतक हैं। आनन्द की प्राप्ति के लिए हैं। सर्व कर्म, सर्व व्यवहार, सर्व धर्म–यह सब कुछ जाति-संग्रह के लिए नहीं हैं, अपितु आनन्द की अनुभूति के लिए है। यदि कोई पूछे कि जीवात्मा सभी में आनन्द ही क्यों चाहता है तो मैं कहूँगा कि परमात्मा अथवा अन्तरात्मा स्वयं आनन्दस्वरूप है, इसलिए। "सच्चिदानन्दमूर्ति" भगवान में हम इसी सत्-चित-आनन्दरूप परमेश्वर की उपासना करते हैं। सर्व में आत्मरूप रहनेवाले, प्रेम के आश्रयभूत, परमानन्दमय, "निष्प्रपञ्चाय शान्ताय", प्रपंचरहित,

क्षोभरहित, "निरालम्बाय", आलम्बनरहित हो कर भी सर्व के अवलम्ब अथवा अधिष्ठाता, "तेजसे", परम तेजोरूप, परमप्रकाशमय –आँखों में रह कर आँखों के प्रकाश, जिह्वा-कर्ण-नासिका आदि सर्वेन्द्रियों में रह कर सर्वेन्द्रियों के विषयों को प्रकाशित करनेवाले वे प्रभु यावन्मात्र जगत को अन्तरबाह्य रूप से उद्‌भासित करनेवाले हैं। इस प्रज्ञा का उदित होना क्या ज्ञान-विज्ञान नहीं है! जो चित् जगत का मूल है, सच्चिदानन्द आत्मा है–उस मूल स्वरूप में जीवात्मा को ले जाने का कार्य नित्य-आनन्दपूर्ण श्रीगुरुदेव करते हैं। जो चितिशक्ति संकोच के कारण चित्‌रूप हो गयी है, उसके उस संकोच को हटा कर, समस्त मलावरण को भेद कर पुनः उसे चितिरूप में पहुँचाने का अनुग्रह श्रीगुरु ही करते हैं, उनका यह शिष्योद्धार रूपी कार्य अपने आप में पूरी एक प्रक्रिया होने के कारण इतिहास नहीं है क्या!

सामान्यतः सुबह का यह स्वाध्याय डेढ़ घण्टे में समाप्त हो जाता है। पूर्ण स्थिरता से बैठना, न हिलना, न डुलना, एक हाथ घुटने पर चिन्मुद्रा में, एक हाथ में स्वाध्याय की पुस्तक, कान ध्वनि की तरफ, चित्त अचूक पढ़ने में, वाणी पूर्ण रूप से उच्चारण में–यह स्वाध्याय है, आसन भी है, ध्यान भी है, चित्त की एकाग्रता भी है, मन्त्र का प्रेम-प्रवाह भी है–क्या आनन्दमय योग है! सहज-सहज ही मानव स्वाध्याय द्वारा परमात्मा के समीप पहुँच सकता है।

यदि मुझसे कोई पूछे कि सर्वश्रेष्ठ स्तोत्र कौन-सा है जिसका पाठ गुरु-भक्तों के लिए अत्यावश्यक है तो मैं कहूँगा "गुरुगीता"। यह इतना महान, पवित्र है कि अज्ञानी को ज्ञानी, महानिर्धन को धनवान और विद्वान को मुक्त बनाता है। यह शिव का दिव्य गायन है जो मुक्तिदायक है और इस संसार में परमानन्द का अथाह सागर है। इसका विषय परब्रह्म विज्ञान है, आत्मयोग है और यह जीवन को दिव्य प्राण प्रदान करनेवाला है। यह एक सुस्वरमय काव्य है। इसके १८२ छन्दोबद्ध

श्लोकों में गुरुभक्ति का महत्त्व, गुरु की भूमिका, उनके स्वरूप और उनके अपूर्व गुणों का वर्णन है। यदि कोई गुरु-समर्पित हो कर इसका नियमित पाठ करता है तो उसे योग के लक्ष्य की प्राप्ति सहज में हो जाती है—ऋद्धि-सिद्धि, जीवन-मुक्ति और आत्मज्ञान।

गुरुगीता में देवी पार्वती, उमा कुमारी, कुण्डलिनी भगवती जो परशिव परमेश्वर की प्रिय अर्धाङ्गिनी हैं, योगियों का परम लक्ष्य हैं, जिनका स्वभाव—सर्वव्यापक चेतना और नित्य आनन्द है, वे अपने परमप्रिय भगवान शिव से गुरुगीता का रहस्य पूछती हैं। शिव उनका समाधान करते हैं कि यह गुरुगीता भुक्ति और मुक्ति दोनों को देनेवाली है। सत्य तो यह है कि केवल वे ही पवित्र और श्रेष्ठ व्यक्ति हैं जो गुरुभक्ति में पूर्ण लीन हैं, जो गुरु को अपना आत्मरूप मान कर उनकी पूजा करते हैं, गुरुगीता के भावार्थ को लिखने में समर्थ हैं। इसके रहस्य को केवल ज्ञानेश्वर महाराज जैसे महान सन्त ही समझ सकते हैं, जिन्होंने अपनी गुरुभक्ति की सामर्थ्य से भैंसे के मुख से वेद पाठ करवाया और पत्थर की दीवार को चलाया, स्वयं गुरुओं के गुरु होते हुए भी पूरा जीवन अपने गुरु के गुण गाते रहे। भक्त रत्न, सन्त एकनाथ भी अपने गुरु की महिमा जीवन भर गाते रहे, कभी थके नहीं। उनकी भक्ति से प्रसन्न हो कर भगवान स्वयं उनके लिए पानी भरते थे। केवल इस तरह के महान व्यक्ति ही गुरुगीता की महानता का उपर्युक्त वर्णन करने में समर्थ हैं।

यदि मुझसे कोई पूछे कि तुम्हारा जीवन सार्थक कैसे बना तो मैं यही कहूँगा, मेरे गुरु के नाम से। उनकी कृपा से ही मैंने सब कुछ अपने अन्दर पा लिया। मेरे गुरु भगवान नित्यानन्द पूर्ण गुरु थे। उनकी यह सिखावनी है कि सभी पवित्र तीर्थों का केन्द्र हृदय है, वहाँ जाओ और वहीं रमण करो। गुरु वास्तव में सभी देवों के देव हैं। एक महान सन्तकवि मध्व-मुनि अपनी कविता में कहते हैं,

"मुझे केवल गुरु-चरणों का ही ध्यान है। यम-नियमों का मुझे कुछ ज्ञान नहीं, गुरु-चरणों के अतिरिक्त अन्य कोई भी पथ मुझे मालूम नहीं। पारस पत्थर को छोड़ कर स्वर्ण को महत्त्व देना क्या मूर्खता नहीं? ऐसी मुक्ति का क्या प्रयोजन है जिसमें गुरु चरणों को त्यागना पड़े।" उनके इस कथन में गहन अर्थ छिपा है। गुरुगीता के पाठ के साथ जो गुरु का स्मरण और पूजा करता है वह दिव्यता को प्राप्त कर लेता है।

मेरे लिए एकमात्र आश्रय है गुरुगीता—गुरु की भक्ति। मैं सतत "गुरु ॐ, गुरु ॐ" जपता हूँ। दिन में कई बार गुरुगीता का पठन और श्रवण होता है। गुरु ही मेरा परम-लक्ष्य हैं।

दोपहर को विष्णुसहस्रनाम का पाठ होता है। श्रीविष्णुसहस्रनाम के आरम्भ में युधिष्ठिर, शर-शय्या पर लेटे हुए भीष्मपितामह से प्रश्न करते हैं :

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम्।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम्॥

को धर्मः सर्व-धर्माणां भवतः परमो मतः।
किं जपन् मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्॥

अर्थात् "लोक में कौन-सा वह एक दिव्य तत्त्व है, कौन-सा एक परायण है, किसकी स्तुति करते हुए, किसकी अर्चना करते हुए मानव कल्याण की प्राप्ति कर सकता है? आपके मत में सर्व धर्मों में सर्वश्रेष्ठ धर्म कौन-सा है, किसका जप करते हुए प्राणी जन्म और संसार के बन्धन से मुक्त हो सकता है? जप कौन-सा करना चाहिए, ईश्वर कौन है, संसार-सागर की सुदृढ़ नौका कौन-सी है?" इन सब प्रश्नों के उत्तर में, भीष्मपितामह कहते हैं—जगत के प्रभु, देवाधिदेव, पुरुषोत्तम, सर्वलोकमहेश्वर, लोकाध्यक्ष, सर्व धर्मों के एकमात्र धर्म, महातेज, महातप, महद्-ब्रह्म, पवित्रों में पवित्रतम, मंगल पदार्थों

के मंगलतम, देवों के देवाधिदेव, प्राणियों के अव्यय पिता जगन्नाथ भगवान विष्णु के एक सहस्र नामों का परायण ही सब पापों का विनाशक और संसार-सागर से पार ले जानेवाली सुदृढ़ नौका है। सहस्रनाम धर्मरूप शास्त्र, मोक्षरूप शान्ति, हृदयस्थ प्रभु का कीर्तन, सर्व रोगों का विनाशक पूर्ण आरोग्य को प्राप्त करानेवाला, विद्या-बल-किर्ती बढ़ानेवाला, सर्वात्मभाव की स्थिति में ले जानेवाला है।

सहस्रनाम में सम्पूर्ण विश्वरूप भगवान का ही पूर्ण ज्ञान होता है, विश्वरूप विश्वात्मा की ही पूजा होती है, विश्वरूप में जड़-चेतनात्मक जो कुछ है, उन सबका आदर और सम्मान होता है। प्रातःकाल उठ कर एक बार सर्वदिशामय, सर्वमन्त्रमय, सर्वात्मा, सर्ववेदमय, सर्वधर्ममय को स्वाध्याय रूप से स्मरण करना, पठनरूप से पूजा करना, ज्ञानरूप से अभेदपूर्वक अपनाना कितने आनन्द की बात है, कितना शान्तिमय विचार है, कितना सर्वात्मैक्य है, सर्व में द्वेषरहित स्नेह है! यह जागतिक स्नेह बढ़ानेवाला नहीं है क्या! वस्तुतः विष्णुसहस्रनाम एक महान सार्वभौमिक महाजपयोग है और अमृतमय है। महाभारत के अन्दर गीता के अनन्तर इसका अवतरण हुआ है। धर्मरूप धर्मराज की जिज्ञासा के परिणामस्वरूप सर्व धर्म का फल देनेवाला, सुलभता से किया जानेवाला, सभी को पूर्णरूप से प्रवेश देनेवाला, मूढ़, पण्डित, विद्वान्, अपढ़, कवि, विद्याहीन, पुण्यात्मा, आबाल-वृद्ध सभी के करने योग्य धर्म का उपदेश भीष्मपितामह ने दिया। भगवान के सहस्रनाम का स्तवन परमोत्कृष्ट धर्म है। यह धर्मरूप, योगरूप, यज्ञरूप है। यह साधनाकाल में साधन है और साधनोत्तर काल में पूर्ण परमानन्दमय है। भगवान का नाम भगवान जैसा ही आनन्दरूप है। मधुरों में मधुरतम, मंगलों में मंगलतम भगवान का नाम भगवान के सदृश्य ही माधुर्यपूर्ण और आनन्दरूप है, आनन्द का भी परमानन्द है। ऐसा "रामनाम रसखान, मूरख जाको

मरम न जाने, पीवत चतुर सुजान" है। वस्तुतः भगवान जैसे प्रेममय, वैसे नाममय भी हैं। नाम में वे नाम आप ही हैं–"आदौ भगवान शब्दराशिः"। राजर्षि भीष्मपितामह ने शर-शय्या में शयन करते हुए सर्व जागतिक धर्मों की व्याख्या करते-करते अन्त में परमात्मा के परम धर्मरूप, शान्तिदाता, मोक्षरूप, सहस्रनाम की मंगलमाला बना कर उसे स्वाध्याय के महत्त्व से सम्पन्न करके युधिष्ठिर को दी। धर्मराज युधिष्ठिर ने पठन-पाठन करके कृत-कृत्यता प्राप्त की। अद्वैतवादी जगद्गुरु आदिशंकराचार्य ने विष्णुसहस्रनाम पर अपना भाष्य लिखा, जगत में उसका प्रचार किया और कहा कि यह धर्मरूप है, जपनीय है तथा द्रव्य-देश काल-नियम-कठिनाई आदि से मुक्त, सुलभता से, प्रेम से सभी के द्वारा इस युग में किया जा सकता है।

बृहन्नारदीयपुराण में कथन है :

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

अर्थात् "कलियुग में केवल हरिनाम ही है, जीव के लिए अन्य कोई गति नहीं है। यह सहज सुलभ साधन है, जिसे मनुष्य किसी भी स्थिति में कर सकता है। चरणदास कहते हैं–"श्वासा माहीं जपे तें दुविधा रहे न कोय।" कबीरदास ने भी कहा है, "साँस साँस सुमिरन करौ यह उपाय अति नीक।" सुलभ साधन होने के कारण ही कलियुग में इसका इतना महत्त्व है। प्रभु का नाम स्मरण ही परम गति है। परमगतिरूप सहस्रनाम के पठन से अन्तर-शक्ति जाग्रत हो जाती है। सहस्रनाम के महामंगलमय घोष से वायुमण्डल पूर्ण शुद्ध हो जाता है, तथा पूरा परिवेश योगमय बन जाता है। सहस्रनाम प्रेमतत्त्व से पूर्ण होने के कारण उसे पढ़ने से हृदय में एक नशा-सा उदित हो जाता है। संतोषजनक प्रेम का स्रोत बहने लग जाता है। उस प्रेम-स्रोत के

हृदय में प्रसरणशील होते ही जीवन परमानन्दमय बन जाता है। जहाँ तक हृदय सूखा है, वहाँ तक सारे संसार के मालिक या शहंशाह होने पर भी जीवन रसहीन और आनन्दहीन है। जिसे हृदय की मस्ती और भगवत्प्रेम प्राप्त है, वह कंगाल होने पर भी राजा है, फकीर होने पर भी अमीर है... और यह सब स्वाध्याय से प्राप्त है।

शाम को सुबह की भाँति आरती होती है। आरती एक महान सम्माननीय व्रत है। भारत में आरती का बड़ा प्रचलन है। देवी-देवता, सुर-नर-राजा आदि सभी आरती के द्वारा अपने प्रियजनों का, हृदयस्थ प्रभु का, आत्मातुल्य गुरुदेव का सम्मान करते हैं। आरती में भी सर्वात्मभाव की पूजा होती है। आरती के उपरान्त अल्पाहार के पश्चात् रात्रि के पूर्वारम्भ में शिवमहिम्न स्तोत्र तथा धुन होती है। महिम्नस्तोत्र भी आह्लाद एवं आनन्द से परिपूर्ण है, जिसमें भक्ति, प्रेम, ज्ञान और शक्ति की महिमा है। महादेव के श्मशानवासी स्वरूप का वर्णन है, जो बाह्य रूप से अमंगल प्रकृति से युक्त पदार्थों के उपभोक्ता होने पर भी परम मांगलिक है। शैवों और वैष्णवों के मतभेद को मिटाने के लिए भगवान विष्णु के द्वारा शिव की पूजा का अत्यन्त सुन्दर वर्णन इस महिम्नस्तोत्र में है, जिसमें भगवान विष्णु एक सहस्र कमल पुष्पों से नित्य भगवान शंकर की उपासना करते हैं और एक बार निश्चित पुष्पों में एक पुष्प कम होने पर अपने नेत्रकमल द्वारा पुष्पों की संख्या पूरी करते हैं। जो आत्मस्थ भगवान निकट से भी निकटतम हैं और पर से भी परे हैं, उनका स्तवन गन्धर्वराज पुष्पदन्त ने इस दिव्य स्तोत्र में किया है। यह स्तोत्र देवताओं और मुनियों से पूज्य है, "सुरवर-मुनिपूज्यम्", स्वर्ग और मोक्ष का हेतु है–"स्वर्गमोक्षैकहेतुम्"। अनन्यचित्त हो कर जो इस स्तोत्र का पठन-पाठन-स्तवन करता है, वह शिव को प्राप्त करता है। इसमें भगवान के निर्गुणस्वरूप और सगुण महिमा की दिव्य अनुभूति मनुष्य को मिलती है। रात्रि के प्रथम प्रहर

में किये जानेवाले इस स्तोत्र से मानव का अन्तःकरण रात्रि में संचरण करनेवाली दूषित शक्तियों से मुक्त होता हुआ विकाररहित हो कर शुद्ध तथा अमृतमय बनता है। उसके बाद भगवन्नाम संकीर्तन संगीतमय स्तरों में तालबद्ध रीति से एकतारा, तम्बूरा आदि वाद्यों के साथ गाया जाता है। 'हरे राम हरे कृष्ण', 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे', 'देवकी नन्दन गोपाला', 'पार्वतीवल्लभ नमः शिवाय' 'गुरुदेव हमारा प्यारा' आदि दिव्य धुनें आनन्दोल्लास और प्रेम की मस्ती में गायी जाती हैं।

इस प्रकार रुचिर स्वर में किया जानेवाला स्वाध्याय, ध्यान और ज्ञान का प्रदाता है तथा हृदय को पवित्र बनाता है। यह एक अत्यन्त मांगलिक तत्त्व है। सत्य कहो तो मानव एक अलौकिक, महान उच्च प्रेम, समता, शान्ति की मूर्ति है। स्वाध्याय का लक्ष्य आपके भीतर है। वह लक्ष्य आपके भावनामय, निष्ठामय, प्रेममय स्वाध्याय को तुरन्त देखता है और भीतर से सुनता है। वह अन्दर से आपकी भक्ति, प्रेम और श्रद्धा का निरीक्षण करता है। इसलिए सावधानी से स्वाध्याय करो। मर्यादा अमर्यादा नहीं होनी चाहिए। ग्रन्थ को सम्मानपूर्वक हाथ में पकड़ो, शुचितया शान्ति से आसनस्थ रहो, चित्त में मन्त्रों के लक्ष्य की भावना पूर्ण हो, सुस्वर मधुरता से गाओ, वे प्रभु आपके अन्दर बड़े प्रेम से आपके एक-एक शब्द का, भावना का श्रवण करते हैं, उन्हें अपने से दूर मत मानो। उन सर्वव्यापी परमात्मा को अपने से दूर देखते-देखते आप उनसे परे हो गये हैं। वे आपके अत्यन्त निकट हैं, आपकी साँसों की अपेक्षा भी निकटतम हैं, उन निकटतम को दूर मत समझो। प्रियजनों, हृदय के राम जब तक प्रसन्न नहीं, तब तक और कोई भी प्रसन्न नहीं होता। जब अन्दर के श्याम प्रसन्न हों, तब सब प्रसन्न हो जाते हैं। स्वाध्याय से पूर्ण आपका अन्तर तृप्त, पवित्र और निर्मल मानसिक चिन्तन से युक्त बन जाता है। जब आपका चित्त स्वाध्याय बन जायेगा, तब आप सुख से सोयेंगे,

सुख से जागेंगे, हँस-हँस कर उल्लासमय जीवन बितायेंगे। मौत का भय नहीं होगा और न जन्म की चिन्ता ही। नित्यप्रति भाव-समाधि में झूलते रहेंगे, व्यवहार भी कुशलता पूर्ण करेंगे, पढ़ाई भी प्रेम से पूरी कर लेंगे, गृहस्थी में भी प्रपंच नहीं मालूम होगा। संसार महास्वर्गमय है, ऐसा भासमान होगा। आपके ऊपर दिव्य कृपा उतरेगी और आपको अपनी दिव्यता की अनुभूति होगी।

स्वाध्याय तप, स्वाध्याय आत्मा, स्वाध्याय धन, स्वाध्याय स्वजन है। सर्वत्र व्यापक आत्मदेव ही आप में व्याप्त है, जो स्वाध्याय का लक्ष्य है। यह आत्मदेव जब तक अनुभूति में नहीं आता, तब तक अनुभवी की अनुभूति में अनुमान अथवा सन्देह न करते हुए पूर्ण श्रद्धा रखो, एक दिन स्वयं ही यह आप में स्फुरणशील हो कर आपकी अनुभूति में आ जायेगा। स्वाध्याय का ऐसा महाप्रताप है।

हमारे परमहितैषी पूर्वज महर्षियों ने जो कुछ आपको स्वाध्यायरूप में दिया, उस स्वाध्याय में आपका प्रेम हो, आपकी प्राप्ति हो। अपने आत्माराम में आपका सदा के लिए रमण हो। आपको आपका लक्ष्य प्राप्त हो। स्वाध्याय आपके लिए फलद्रूप हो। इति आशीर्वाद।

१०-९-१९६८
गणेशपुरी

आप लोगों के अपने
स्वामी मुक्तानन्द

प्रथम खण्ड

॥ श्रीगुरु ॥

सद्गुरुनाथ महाराज की जय।

पार्वती-पतये हर हर हर महादेव।
हे पार्वती के पति, त्रिविध तापों को हरनेवाले महादेव, आपको नमस्कार है।

मुक्तानन्द महान, जय सद्गुरु भगवान।
जय सद्गुरु भगवान।

पार्वती-पतये हर हर हर महादेव।
हे पार्वती के पति, त्रिविध तापों को हरनेवाले महादेव, आपको नमस्कार है।

श्रीगुरुपादुकापञ्चकम्

ॐ नमो गुरुभ्यो गुरुपादुकाभ्यो
नमः परेभ्यः परपादुकाभ्यः।
आचार्यसिद्धेश्वरपादुकाभ्यो
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्यः॥ १ ॥

सर्व गुरुओं को नमस्कार है। गुरुपादुकाओं को नमस्कार है। श्रीगुरुदेव के गुरुओं अथवा परगुरुओं को और उनकी पादुकाओं को नमस्कार है। आचार्यों और सिद्धविद्याओं के स्वामी सिद्धेश्वरों की पादुकाओं को नमस्कार है।

ऐंकारह्रींकाररहस्ययुक्त-
श्रींकारगूढार्थमहाविभूत्या।
ॐकारमर्मप्रतिपादिनीभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम्॥ २ ॥

जो वाग्बीज ऐंकार और मायाबीज ह्रींकार के रहस्य से युक्त षोडशी बीज श्रींकार के गूढ़ अर्थ के महान ऐश्वर्य से ॐकार के मर्मस्थान को प्रकट करनेवाली हैं, ऐसी उन गुरुपादुकाओं को नमस्कार है, नमस्कार है।

होत्राग्निहौत्राग्निहविष्यहोतृ-
होमादिसर्वाकृतिभासमानम्।
यद् ब्रह्म तद्बोधवितारिणीभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम्॥ ३ ॥

होत्र और हौत्र इन दोनों प्रकार की अग्नियों में हवन सामग्री, होम करनेवाले होता और होम आदि इन सब में भासनेवाले एक ही परब्रह्म तत्त्व का साक्षात् अनुभव करा देनेवाली गुरुदेव की पादुकाओं को नमस्कार है, नमस्कार है।

कामादिसर्पव्रजगारुडाभ्यां
विवेकवैराग्यनिधिप्रदाभ्याम्।
बोधप्रदाभ्यां द्रुतमोक्षदाभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम्॥ ४॥

जो अन्तःकरण के काम-क्रोधादि महासर्पों के विष को उतारनेवाली विषवैद्य हैं, विवेक अर्थात् अन्तर-ज्ञान और वैराग्य की निधि को देनेवाली हैं, जो प्रत्यक्ष बोध-प्रदायिनी और शीघ्र मोक्ष देनेवाली हैं, श्रीगुरुदेव की ऐसी पादुकाओं को नमस्कार है, नमस्कार है।

अनन्तसंसारसमुद्रतार-
नौकायिताभ्यां स्थिरभक्तिदाभ्याम्।
जाड्याब्धिसंशोषणवाडवाभ्यां
नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम्॥ ५॥

अन्तहीन संसाररूपी सागर को पार करने के लिए जो नौकारूप हैं; अविचल भक्ति को देनेवाली हैं; प्रमाद, आलस्य, अज्ञानरूपी जड़ता के समुद्र को सुखाने के लिए जो बड़वाग्नि [समुद्र में रहनेवाली आग] के समान हैं; श्रीगुरुदेव की उन पादुकाओं को नमस्कार है, नमस्कार है।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

श्रीगुरुगीता

ॐ अस्य श्रीगुरुगीतास्तोत्रमन्त्रस्य
भगवान् सदाशिव ऋषिः।
नानाविधानि छन्दांसि। श्रीगुरुपरमात्मा देवता।
हं बीजम्। सः शक्तिः। क्रों कीलकम्।
श्रीगुरुप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः॥

श्रीगुरुगीता प्रारम्भ होती है। इस श्रीगुरुगीतास्तोत्र मन्त्र के ऋषि भगवान् सदाशिव हैं। इसमें अनेक प्रकार के छन्द हैं। इस गुरुगीतास्तोत्र के देवता श्रीगुरु परमात्मा हैं। 'हं' बीज है। 'सः' शक्ति है। 'क्रों' कीलक है। श्रीगुरु की प्रसन्नता अथवा कृपा की सिद्धि के लिए जप में इसका अनुष्ठान है।

अथ ध्यानम्
हंसाभ्यां परिवृत्तपत्रकमलैर्दिव्यैर्जगत्कारणैर्
विश्वोत्कीर्णमनेकदेहनिलयैः स्वच्छन्दमात्मेच्छया।
तद् द्योतं पदशाम्भवं तु चरणं दीपाङ्कुरग्राहिणं
प्रत्यक्षाक्षरविग्रहं गुरुपदं ध्यायेद्विभुं शाश्वतम्॥
मम चतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

यह ध्यान है : दृश्यमान सचराचर जगत के कारणस्वरूप 'अहं' और 'सः' इन दो व्यापक दिव्य कमल के दो पत्रों से विश्व की रचना के लिए अनेक शरीरों में अपनी ही स्वेच्छा से स्वच्छन्दरूप से सतत निवास करनेवाले, परमशिव पद से स्वयं प्रकाशित चरणकमलाकार, दीपज्योति की अंगुष्ठप्रमाण शिखासदृश, निरंजन, साक्षात्

अक्षरशरीर, शब्दातीत होते हुए भी 'अ' से 'क्ष' तक समस्त वर्णमूर्ति, नामरहित भी सर्व नामवाले, व्यापक, विभु, नित्य आनन्दस्वरूप, स्वयं सर्वथा मुक्त आनन्दैकरस गुरुदेव का ध्यान करना चाहिए। धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूपी अपने चार पुरुषार्थों की सिद्धि के हेतु जप करता हूँ।

सूत उवाच

कैलासशिखरे रम्ये भक्तिसन्धाननायकम्।
प्रणम्य पार्वती भक्त्या शङ्करं पर्यपृच्छत॥ १ ॥

सूतजी बोले

एक बार रमणीय कैलास शिखर पर पार्वती ने भक्ति का संधान करने में कुशल भगवान शिव से भक्तिपूर्वक प्रणाम करके प्रश्न किया।

श्रीदेव्युवाच

ॐ नमो देवदेवेश परात्पर जगद्गुरो।
सदाशिव महादेव गुरुदीक्षां प्रदेहि मे॥ २ ॥

श्री देवी बोलीं

हे देवों के देव! हे परात्पर जगद्गुरु! आपको नमस्कार हो। हे सदा कल्याणस्वरूप महादेव, मुझे गुरु-दीक्षा दीजिए।

केन मार्गेण भो स्वामिन् देही ब्रह्ममयो भवेत्।
त्वं कृपां कुरु मे स्वामिन् नमामि चरणौ तव॥ ३ ॥

हे स्वामी, देहधारी जीव किस साधन-मार्ग का अवलम्बन करके ब्रह्ममय हो सकता है? मुझ पर आप कृपा कीजिए; मैं आपके चरणों में प्रणाम करती हूँ।

ईश्वर उवाच

मम रूपासि देवि त्वं त्वत्प्रीत्यर्थं वदाम्यहम्।
लोकोपकारकः प्रश्नो न केनापि कृतः पुरा॥ ४॥

ईश्वर बोले

हे देवी, तुम मेरा ही स्वरूप हो। मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिए बताता हूँ। यह लोगों का कल्याण करनेवाला प्रश्न है, जो पहले कभी किसी ने नहीं पूछा।

दुर्लभं त्रिषु लोकेषु तच्छृणुष्व वदाम्यहम्।
गुरुं विना ब्रह्म नान्यत् सत्यं सत्यं वरानने॥ ५॥

तीनों लोकों में दुर्लभ इस तत्त्व को मैं कहता हूँ, तुम सुनो। गुरु से भिन्न ब्रह्म नहीं है, हे सुन्दरी, यह सत्य है, यह सत्य है।

वेदशास्त्रपुराणानि इतिहासादिकानि च।
मन्त्रयन्त्रादिविद्याश्च स्मृतिरुच्चाटनादिकम्॥ ६॥
शैवशाक्तागमादीनि अन्यानि विविधानि च।
अपभ्रंशकराणीह जीवानां भ्रान्तचेतसाम्॥ ७॥

वेद, शास्त्र, पुराण और इतिहास आदि, मन्त्र-तन्त्र आदि विद्याएँ और स्मृति, उच्चाटन आदि विधियाँ, शैव-शाक्त आगम और अन्य विविध प्रकार के मत-मतान्तरवाले ग्रन्थ, भ्रमित चित्तवाले जीवों को भ्रष्ट करनेवाले हैं।

यज्ञो व्रतं तपो दानं जपस्तीर्थं तथैव च।
गुरुतत्त्वमविज्ञाय मूढास्ते चरते जनाः॥ ८॥

गुरु-तत्त्व को न जाननेवाले मूढ़ लोग यज्ञ, व्रत, तप, दान, जप, तीर्थ तथा ऐसे ही अनेक कार्यों का आचरण करते हैं।

गुरुर्बुद्ध्यात्मनो नान्यत् सत्यं सत्यं न संशयः।
तल्लाभार्थं प्रयत्नस्तु कर्तव्यो हि मनीषिभिः॥ ९ ॥

ज्ञानस्वरूप आत्मा से श्रीगुरु भिन्न नहीं हैं। यह सत्य है, इसमें संशय नहीं। इसलिए बुद्धिमान मनुष्यों को गुरु की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

गूढविद्या जगन्माया देहे चाज्ञानसम्भवा।
उदयो यत्प्रकाशेन गुरुशब्देन कथ्यते॥ १० ॥

यह गूढ़विद्या जगत में मायारूप में तथा शरीर में अज्ञानरूप में रहती है। जिसके जागरण से सत्यज्ञान का उदय होता है, उस तत्त्व को 'गुरु' संज्ञा से जाना जाता है।

सर्वपापविशुद्धात्मा श्रीगुरोः पादसेवनात्।
देही ब्रह्म भवेद्यस्मात् त्वत्कृपार्थं वदामि ते॥ ११ ॥

श्रीगुरु के चरणों की सेवा से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो कर शुद्ध हो जाता है। देहधारी जीव जिससे ब्रह्मरूप बनता है उस तत्त्व को मैं तुम्हें कृपापूर्वक कहता हूँ।

गुरुपादाम्बुजं स्मृत्वा जलं शिरसि धारयेत्।
सर्वतीर्थावगाहस्य सम्प्राप्नोति फलं नरः॥ १२ ॥

श्रीगुरु के चरण-कमलों का स्मरण करके सिर पर जल धारण करने से मनुष्य को सर्व तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है।

शोषणं पापपङ्कस्य दीपनं ज्ञानतेजसाम्।
गुरुपादोदकं सम्यक् संसारार्णवतारकम्॥ १३॥

श्रीगुरु का चरणजल पापरूपी कीचड़ को सुखानेवाला, ज्ञानरूपी तेज को उज्ज्वल करनेवाला और संसार-सागर से तारनेवाला है।

अज्ञानमूल-हरणं जन्म-कर्म-निवारणम्।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं गुरुपादोदकं पिबेत्॥ १४॥

अज्ञान की जड़ को उखाड़नेवाला, जन्म और कर्म का निवारण करनेवाला श्रीगुरु-पादोदक, ज्ञान और वैराग्य की सिद्धि के लिए पीना चाहिए।

गुरोः पादोदकं पीत्वा गुरोरुच्छिष्टभोजनम्।
गुरुमूर्तेः सदा ध्यानं गुरुमन्त्रं सदा जपेत्॥ १५॥

श्रीगुरु के पादोदक का पान करके गुरु के उच्छिष्ट [गुरु को समर्पित करके बचा हुआ] भोजन करना चाहिए तथा श्रीगुरुमूर्ति का निरन्तर ध्यान और गुरु द्वारा दिये गये मन्त्र का सदा जप करना चाहिए।

काशीक्षेत्रं तन्निवासो जाह्नवी चरणोदकम्।
गुरुर्विश्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्म निश्चितम्॥ १६॥

श्रीगुरु का निवास-स्थान ही काशी है, उनका चरणोदक गंगा है, श्रीगुरु साक्षात् विश्वेश्वर हैं, वे निश्चय ही साक्षात् तारक ब्रह्म हैं।

गुरोः पादोदकं यत्तु गयाऽसौ सोऽक्षयो वटः।
तीर्थराजः प्रयागश्च गुरुमूर्त्यै नमो नमः॥ १७॥

श्रीगुरु का पादोदक ही गया तीर्थ है, वे ही अक्षयवट हैं, वे ही तीर्थराज प्रयाग हैं, ऐसी श्रीगुरुमूर्ति को बारम्बार नमस्कार।

गुरुमूर्तिं स्मरेन्नित्यं गुरुनाम सदा जपेत्।
गुरोराज्ञां प्रकुर्वीत गुरोरन्यन्न भावयेत्॥ १८॥

श्रीगुरुमूर्ति का नित्य स्मरण करें, गुरुनाम [गुरु के दिये हुए मन्त्र] का सदा जप करें। गुरुदेव की आज्ञा का पालन करें। गुरुदेव से भिन्न किसी भी वस्तु की भावना न करें।

गुरुवक्त्रस्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत्प्रसादतः।
गुरोर्ध्यानं सदा कुर्यात् कुलस्त्री स्वपतेर्यथा॥ १९॥

श्रीगुरु के मुखारविन्द में स्थित ब्रह्म उनकी कृपा से ही प्राप्त किया जा सकता है। श्रीगुरुदेव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए, जैसे कुलीन स्त्री सतत अपने पति का ध्यान करती है।

स्वाश्रमं च स्वजातिं च स्वकीर्तिपुष्टिवर्धनम्।
एतत्सर्वं परित्यज्य गुरोरन्यन्न भावयेत्॥ २०॥

अपना आश्रम, अपनी जाति, अपनी कीर्ति और उन्नति के साधन, इन सब का परित्याग करके श्रीगुरु के सिवा अन्य किसी की भावना नहीं करनी चाहिए।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां सुलभं परमं पदम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोराराधनं कुरु॥ २१॥

जो अनन्यभाव से मेरा [शिवरूप गुरु का] प्रयत्नपूर्वक चिन्तन करता है, उसके लिए परमपद सुलभ है। इसलिए गुरु की आराधना करो।

त्रैलोक्ये स्फुट-वक्तारो देवाद्यसुरपन्नगाः।
गुरुवक्त्र-स्थिता विद्या गुरुभक्त्या तु लभ्यते॥ २२॥

त्रिलोक में देव-असुर-नाग आदि स्पष्ट वर्णन करते हैं कि गुरुदेव के मुखारविन्द में रहनेवाली विद्या [सत्यज्ञान] गुरुभक्ति से ही प्राप्त होती है।

गुकारस्त्वन्धकारश्च रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञान-ग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः॥ २३॥

'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रु' शब्द का अर्थ है तेज-प्रकाश। गुरु ही अज्ञान का नाश करनेवाले ब्रह्म हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

गुकारः प्रथमो वर्णो मायादि-गुणभासकः।
रुकारो द्वितीयो ब्रह्म मायाभ्रान्तिविनाशनम्॥ २४॥

'गुरु' शब्द का प्रथम वर्ण 'गु' माया आदि गुणों को प्रकट करनेवाला है और दूसरा वर्ण 'रु' ब्रह्म का द्योतक है जो माया की भ्रान्ति का विनाश करनेवाला है।

एवं गुरुपदं श्रेष्ठं देवानामपि दुर्लभम्।
हाहाहूहूगणैश्चैव गन्धर्वैश्च प्रपूज्यते॥ २५॥

इस प्रकार गुरुपद सबसे श्रेष्ठ है, देवों को भी दुर्लभ है और हाहा-हूहू नामक गणों द्वारा तथा गन्धर्वों द्वारा प्रपूजित है।

ध्रुवं तेषां च सर्वेषां नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्।
आसनं शयनं वस्त्रं भूषणं वाहनादिकम्॥ २६॥

साधकेन प्रदातव्यं गुरु-संतोष-कारकम्।
गुरोराराधनं कार्यं स्व-जीवित्वं निवेदयेत्॥ २७॥

उन सभी की यह दृढ़ मान्यता है कि गुरु से परे कोई दूसरा तत्त्व नहीं है। साधक को, श्रीगुरु जिससे भी सन्तुष्ट हों, ऐसे आसन, शयन, वस्त्र, भूषण, वाहन आदि गुरु-अर्पण करने चाहिए। श्रीगुरु की आराधना करनी चाहिए और अपने जीवन को अर्पण कर देना चाहिए।

कर्मणा मनसा वाचा नित्यमाराधयेद् गुरुम्।
दीर्घदण्डं नमस्कृत्य निर्लज्जो गुरुसन्निधौ॥ २८॥

कर्म, मन, और वाणी से सदा गुरु की आराधना करें और श्रीगुरु के सम्मुख लज्जा त्याग कर दीर्घ साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करना चाहिए।

शरीरमिन्द्रियं प्राणान् सद्गुरुभ्यो निवेदयेत्।
आत्मदारादिकं सर्वं सद्गुरुभ्यो निवेदयेत्॥ २९॥

शरीर, इन्द्रिय, प्राण सद्गुरु को निवेदन करना चाहिए। स्वयं तथा पत्नी आदि सबको—सर्व प्रिय सम्बन्धों को—सद्गुरु के लिए अर्पण करना चाहिए; अर्थात् ममत्व भाव का सम्पूर्ण त्याग करते हुए सद्गुरु की शरण में जाना चाहिए।

कृमिकीटभस्मविष्ठा-दुर्गन्धिमलमूत्रकम्।
श्लेष्मरक्तं त्वचा मांसं वञ्चयेन्न वरानने॥ ३०॥

हे सुन्दरी! अपने शरीर के कृमि, कीट, भस्म, विष्ठा, दुर्गन्ध, मलमूत्र, श्लेष्म, रक्त, त्वचा, मांस आदि का भी श्रीगुरु से अपहार नहीं करना चाहिए, अर्थात् अपने को पूर्णतया सद्गुरु को अर्पण करने में वंचना नहीं करनी चाहिए।

संसारवृक्षमारूढाः पतन्तो नरकार्णवे।
येन चैवोद्धृताः सर्वे तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३१॥

संसाररूपी वृक्ष पर आरूढ़ हो कर नरकरूपी समुद्र में गिरते हुए सब जीवों का जिन्होंने उद्धार किया है उन श्रीगुरु को नमस्कार है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर् गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३२॥

गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही शिव हैं, गुरु ही परब्रह्म हैं, ऐसे श्रीगुरु को नमस्कार है।

हेतवे जगतामेव संसारार्णव-सेतवे।
प्रभवे सर्वविद्यानां शम्भवे गुरवे नमः॥ ३३॥

जो जगत की उत्पत्ति के कारणरूप हैं, संसार-सागर को पार करने के लिए सेतुरूप हैं तथा जो सब विद्याओं के उदय-स्थान हैं, ऐसे शिवस्वरूप कल्याणकारी श्रीगुरु को नमस्कार है।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३४॥

अज्ञानरूप अन्धकार से अन्धे बने हुए जीव के नेत्रों को जिन्होंने ज्ञानरूपी अंजन-शलाका से खोल दिया है, ऐसे श्रीगुरु को नमस्कार है।

त्वं पिता त्वं च मे माता त्वं बन्धुस्त्वं च देवता।
संसार-प्रतिबोधार्थं तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३५॥

संसार के सत्य ज्ञान का बोध करानेवाले आप ही मेरे पिता हैं और आप ही मेरी माता हैं, आप ही बन्धु हैं और आप ही इष्ट देवता हैं; ऐसे उन श्रीगुरु को नमस्कार है।

यत्सत्येन जगत्सत्यं यत्प्रकाशेन भाति तत्।
यदानन्देन नन्दन्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३६॥

जिनके अस्तित्व से जगत का अस्तित्व है, जिनके प्रकाश से वह प्रकाशित होता है, जिनके आनन्द से सब आनन्दित होते हैं, उन [सच्चिदानन्दरूप] श्रीगुरु को नमस्कार है।

यस्य स्थित्या सत्यमिदं यद्भाति भानुरूपतः।
प्रियं पुत्रादि यत्प्रीत्या तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३७॥

जिनकी स्थिति से यह जगत है, जिनके सूर्यरूप होने से यह सब प्रकाशित होता है, जिनकी प्रीति के कारण पुत्रादि सब सम्बन्धी प्रिय लगते हैं, उन श्रीगुरु को नमस्कार है।

येन चेतयते हीदं चित्तं चेतयते न यम्।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३८॥

जिनसे यह जगत चेतनस्वरूप लगता है, किन्तु चित्त जिनको प्रकाशित नहीं कर सकता; जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाएँ जिनके द्वारा प्रकाशित होती हैं, उन चित्स्वरूप श्रीगुरु को नमस्कार है।

यस्य ज्ञानादिदं विश्वं न दृश्यं भिन्नभेदतः।
सदेकरूपरूपाय तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ३९॥

जिनके ज्ञान से यह विश्व [शिव से] भिन्न अथवा भेदरूप दिखाई नहीं देता, एकमात्र सद्रूप ही जिनका रूप है, उन श्रीगुरु को नमस्कार है।

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अनन्यभावभावाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४० ॥

जो कहते हैं कि उन्होंने [ब्रह्म को] नहीं जाना है, वे ज्ञानी हैं और जो कहते हैं कि जान लिया, वे नहीं जानते हैं—जो ब्रह्म से अभेदभावपूर्ण हैं, ऐसे श्रीगुरु को नमस्कार है।

यस्य कारणरूपस्य कार्यरूपेण भाति यत्।
कार्यकारणरूपाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४१ ॥

कारणरूप जिन गुरुदेव से कार्यरूप जगत प्रकाशित होता है, उन कार्य-कारणरूप श्रीगुरु को नमस्कार है।

नानारूपमिदं सर्वं न केनाप्यस्ति भिन्नता।
कार्यकारणता चैव तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४२ ॥

नानारूपवाले इस विश्व में कहीं भी कोई भिन्नता नहीं है, केवल कार्य-कारणभाव ही है जो श्रीगुरु हैं, ऐसे श्रीगुरु को नमस्कार है।

यदङ्घ्रि-कमलद्वन्द्वं द्वन्द्वताप-निवारकम्।
तारकं सर्वदाऽपद्भ्यः श्रीगुरुं प्रणमाम्यहम् ॥ ४३ ॥

जिनके युगल-चरण-कमल सुख-दुःख शीतोष्णादि द्वन्द्व तापों का निवारण करते हैं और सदा आपत्तियों से उद्धार करते हैं, ऐसे श्रीगुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।

शिवे क्रुद्धे गुरुस्त्राता गुरौ क्रुद्धे शिवो न हि।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं शरणं व्रजेत्॥ ४४॥

शिव के रुष्ट होने पर गुरु रक्षण करनेवाले हैं, किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर शिव भी रक्षण नहीं कर सकते; इसलिए पूर्ण प्रयत्न द्वारा श्रीगुरु की शरण में जाना चाहिए।

वन्दे गुरु-पदद्वन्द्वं वाङ्मनश्चित्त-गोचरम्।
श्वेतरक्तप्रभाभिन्नं शिवशक्त्यात्मकं परम्॥ ४५॥

परशिव और पराशक्तिस्वरूप, श्वेत-अरुण प्रभा से युक्त, मन-वाणी और चित्त से गोचर श्रीगुरु के चरण-युगल की मैं वन्दना करता हूँ।

गुकारं च गुणातीतं रुकारं रूपवर्जितम्।
गुणातीत-स्वरूपं च यो दद्यात्स गुरुः स्मृतः॥ ४६॥

'गु' शब्द गुणातीत और 'रु' शब्द रूपातीत को प्रकट करता है। जो गुणरूप से अतीत [निर्गुण-निराकर] आत्मस्वरूप के प्रदाता हैं, उन्हें गुरु कहा गया है।

अत्रिनेत्रः सर्वसाक्षी अचतुर्बाहुरच्युतः।
अचतुर्वदनो ब्रह्मा श्रीगुरुः कथितः प्रिये॥ ४७॥

हे प्रिये, तीन नेत्रों के न होने पर भी जो सर्वसाक्षी शिवस्वरूप हैं, चार भुजाओं के न होने पर भी अच्युत विष्णु हैं, चार मुखों के न होने पर भी ब्रह्मा हैं, उन्हें श्रीगुरु कहा गया है।

अयं मयाञ्जलिर्बद्धो दयासागरवृद्धये।
यदनुग्रहतो जन्तुश्चित्रसंसारमुक्तिभाक्॥ ४८॥

दया के उमड़ते हुए समुद्र उन श्रीगुरुदेव को मैं हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपा से जीव इस भेदात्मक संसार से मुक्ति पा लेता है।

श्रीगुरोः परमं रूपं विवेक-चक्षुषोऽमृतम्।
मन्दभाग्या न पश्यन्ति अन्धाः सूर्योदयं यथा॥ ४९॥

श्रीगुरु का परमरूप विवेकरूपी चक्षुओं के लिए अमृत-सदृश है। मन्दभाग्य लोग उस रूप को नहीं देखते, जैसे अन्धे सूर्योदय को नहीं देख पाते।

श्रीनाथ-चरणद्वन्द्वं यस्यां दिशि विराजते।
तस्यै दिशे नमस्कुर्याद् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये॥ ५०॥

हे प्रिये, जिस दिशा में श्रीगुरुनाथ के चरण-युगल विराजते हैं, उस दिशा को प्रतिदिन भक्तिपूर्वक नमस्कार करना चाहिए।

तस्यै दिशे सततमञ्जलिरेष आर्ये
प्रक्षिप्यते मुखरितो मधुपैर्बुधैश्च।
जागर्ति यत्र भगवान् गुरुचक्रवर्ती
विश्वोदयप्रलयनाटकनित्यसाक्षी॥ ५१॥

हे आर्ये, जिस दिशा में विश्व की उत्पत्ति और प्रलयरूप नाटक के नित्य साक्षी भगवान चक्रवर्ती गुरुदेव जाग्रत् हैं, उस दिशा में विद्वज्जन मन्त्रोच्चार करते हुए, गुंजारव करनेवाले भ्रमर जिन पर मँडराते हैं, ऐसे सुगन्धित पुष्पों की पुष्पांजलि अर्पित करते हैं।

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवं
सिद्धौघं बटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम्।

वीरान् द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकं
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम्॥ ५२॥

श्रीगुरुदेव, परम गुरुदेव और परात्पर गुरुदेवस्वरूप श्रीनाथादि तीन गुरुदेव; गणपति, कामरूप, पूर्णगिरि जालन्धर तीन पीठ; मन्थान आदि आठ भैरव, सिद्धों का समुदाय, विरंचि, चक्र, स्कन्द आदि तीन बटुक; प्रकाश और विमर्श [शिव और शक्ति] दो चरण, योन्यम्बादि दूती, अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल, सोममण्डल आदि मण्डल; दस वीर [भैरव], चौंसठ योगिनी, सर्वसंशोधिनी आदि नौ मुद्रा; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव पाँच वीर; 'अ' से 'क्ष' पर्यन्त इक्यावन मात्राओं से युक्त मालिनी मन्त्र—इन सब तत्त्वों से युक्त जो गुरु का मण्डल है, अर्थात् गुरु की राजसभा है, उसे मैं नमन करता हूँ।

अभ्यस्तैः सकलैः सुदीर्घमनिलैर्व्याधिप्रदैर्दुष्करैः
प्राणायाम-शतैरनेक-करणैर् दुःखात्मकैर्दुर्जयैः।
यस्मिन्नभ्युदिते विनश्यति बली वायुः स्वयं तत्क्षणात्
प्राप्तुं तत्सहजं स्वभावमनिशं सेवध्वमेकं गुरुम्॥ ५३॥

दुष्कर व्याधि देनेवाले, इन्द्रियों को दुःख देनेवाले, दुर्जय, दीर्घश्वास क्रियारूप सैकड़ों संख्या में किए हुए प्राणायामों के अभ्यास से क्या लाभ? जिसके उदय होते ही बलवान् वायु तत्क्षण शान्त होता है, उस सहज आत्मभाव को प्राप्त करने के लिए निरन्तर गुरुसेवा करो।

स्वदेशिकस्यैव शरीरचिन्तनं
भवेदनन्तस्य शिवस्य चिन्तनम्।
स्वदेशिकस्यैव च नामकीर्तनं
भवेदनन्तस्य शिवस्य कीर्तनम्॥ ५४॥

अपने गुरुदेव के शरीर का [स्वरूप का] चिन्तन अनन्त शिव के स्वरूप के चिन्तन के बराबर है। अपने गुरुदेव के नाम का [गुरुमन्त्र का] कीर्तन अनन्त शिव के कीर्तन के बराबर है।

यत्पादरेणुकणिका कापि संसारवारिधेः।
सेतुबन्धायते नाथं देशिकं तमुपास्महे॥५५॥

जिनके चरणरज की एक छोटी-सी कनी संसार-सागर के पार जाने के लिए सेतु बन जाती है, ऐसे गुरुनाथ की मैं उपासना करता हूँ।

यस्मादनुग्रहं लब्ध्वा महदज्ञानमुत्सृजेत्।
तस्मै श्रीदेशिकेन्द्राय नमश्चाभीष्टसिद्धये॥५६॥

जिनके अनुग्रह को प्राप्त कर महान अज्ञान का नाश होता है, ऐसे गुरुदेव को अपने इष्ट विषय की सिद्धि के लिए नमस्कार है।

पादाब्जं सर्वसंसार-दावानलविनाशकम्।
ब्रह्मरन्ध्रे सिताम्भोज-मध्यस्थं चन्द्रमण्डले॥५७॥
अकथादित्रिरेखाब्जे सहस्रदलमण्डले।
हंसपार्श्वत्रिकोणे च स्मरेत्तन्मध्यगं गुरुम्॥५८॥

जिनका चरणकमल संसार के सब दावानलों का विनाशक है, उन श्रीगुरुदेव का, ब्रह्मरन्ध्र में चन्द्रमण्डल के अन्दर श्वेतकमल के बीच तथा सहस्रदलमण्डलरूपी कमल में अकथादि तीन रेखाओं से निर्मित और 'हं' व 'सः' वर्णों से युक्त त्रिकोण में ध्यान करो।

सकलभुवनसृष्टिः कल्पिताशेषपुष्टिर्
निखिलनिगमदृष्टिः सम्पदां व्यर्थदृष्टिः।

अवगुणपरिमार्ष्टिस् तत्पदार्थैकदृष्टिर्
भवगुणपरमेष्टिर् मोक्षमार्गैकदृष्टिः ॥ ५९ ॥

सकलभुवनरङ्ग-स्थापनास्तम्भयष्टिः
सकरुणरसवृष्टिस् तत्त्वमालासमष्टिः ।
सकलसमयसृष्टिः सच्चिदानन्ददृष्टिर्
निवसतु मयि नित्यं श्रीगुरोर्दिव्यदृष्टिः ॥ ६० ॥

सम्पूर्ण लोकों का सृजन करनेवाली, समस्त पदार्थों की पुष्टि करनेवाली, सकल शास्त्रों में पकड़ रखनेवाली, सम्पदाओं को व्यर्थ माननेवाली, अवगुणों का परिमार्जन करनेवाली, 'तत्' सत्ता में ही एकदृष्टि रखनेवाली, संसार के गुणों की विधायिका, मोक्ष मार्ग पर ही जिसकी दृष्टि टिकी हुई है, समस्त लोकों के रंगमंच की स्थापना के लिए जो आधारभूत स्तम्भ के समान है, करुणा रस के लिए वर्षा की भाँति है, जो छत्तीस तत्त्वों की समष्टिरूप माला के समान है, जिससे समस्त नीति-नियमों अथवा काल की रचना होती है, जो सच्चिदानन्द स्वरूप है, ऐसी श्रीगुरुदेव की दिव्य दृष्टि सदा मेरे ऊपर रहे।

अग्निशुद्धसमं तात ज्वालापरिचकाधिया ।
मन्त्रराजमिमं मन्येऽहर्निशं पातु मृत्युतः ॥ ६१ ॥

हे देवी! अग्नि से शुद्ध सुवर्ण के समान चारों ओर से बुद्धिरूपी ज्वाला से शुद्ध किया हुआ यह मन्त्रराज निरन्तर मृत्यु से रक्षण करे, ऐसा मैं मानता हूँ।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तत्समीपके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्य बाह्यतः ॥ ६२ ॥

वह तत्त्व [गुरु अथवा ब्रह्म] गतिशील है, अचल है, वह दूर है, वह समीप है। वह तत्त्व सबके [समग्र विश्व के] भीतर है, तथा वह सबके बाहर भी है।

अजोऽहमजरोऽहं च अनादिनिधनः स्वयम्।
अविकारश्चिदानन्दः अणीयान्महतो महान्॥ ६३॥

'अहं' शब्द से वर्णित वह तत्त्व अज, अजर, अनादि और मृत्युरहित है। निर्विकार, चिदानन्दस्वरूप, अणु से सूक्ष्म और महत् से महान है।

अपूर्वाणां परं नित्यं स्वयंज्योतिर्निरामयम्।
विरजं परमाकाशं ध्रुवमानन्दमव्ययम्॥ ६४॥

वह तत्त्व अपूर्व [यानि जिससे पूर्व कुछ नहीं था उस] से भी परे है, वह नित्य, स्वयंप्रकाश, निरामय, मलरहित, परमाकाशस्वरूप, अविचल, आनन्दस्वरूप, क्षयरहित है।

श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यम् अनुमानश्चतुष्टयम्।
यस्य चात्मतपो वेद देशिकं च सदा स्मरेत्॥ ६५॥

मननं यद्भवं कार्यं तद्वदामि महामते।
साधुत्वं च मया दृष्ट्वा त्वयि तिष्ठति साम्प्रतम्॥ ६६॥

जिन गुरुदेव का आत्मतपोबल वेद-शास्त्र, प्रत्यक्ष, इतिहास और अनुमान इन चार प्रमाणों से जाना जाता है, ऐसे गुरुनाथ का सदा स्मरण करें। हे देवी, तुममें साधुता को देख कर अब उस तत्त्व का मनन कैसे करना चाहिए यह मैं तुमसे कहता हूँ।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ६७॥

जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण वलयाकार चर और अचर जगत व्याप्त है, उस पद को [ब्रह्म या आत्मतत्त्व को] जिन्होंने दिखाया, उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

सर्वश्रुतिशिरोरत्न-विराजितपदाम्बुजः।
वेदान्ताम्बुजसूर्यो यस्तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ६८॥

जिनके चरण-कमल सब वेदों के मुकुटमणिरूप महावाक्यों से सुशोभित होते हैं, और जो वेदान्तरूप कमल को विकसित करने के लिए सूर्य के समान हैं, उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

यस्य स्मरणमात्रेण ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम्।
य एव सर्वसम्प्राप्तिस्तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ६९॥

जिनके स्मरणमात्र से अपने आप ज्ञान उत्पन्न होता है, जो स्वयं सर्व प्राप्तिरूप हैं, उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम्।
नादबिन्दुकलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ७०॥

जो चैतन्यस्वरूप, शाश्वत, शान्त, आकाश से परे, निरंजन, नादातीत, द्वन्द्वातीत, कलातीत हैं, उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

स्थावरं जङ्गमं चैव तथा चैव चराचरम्।
व्याप्तं येन जगत्सर्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ७१॥

स्थावर-जंगम, चराचर समस्त जगत जिनसे व्याप्त है, उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

ज्ञानशक्तिसमारूढस्तत्त्वमालाविभूषितः।
भुक्तिमुक्तिप्रदाता यस्तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ७२॥

ज्ञानशक्ति पर आरूढ़ छत्तीस तत्त्वों की माला से अलंकृत, भुक्ति और मुक्ति देनवाले श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

अनेकजन्मसम्प्राप्त-सर्वकर्म-विदाहिने।
स्वात्मज्ञानप्रभावेण तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ७३॥

अपने आत्मज्ञान के प्रभाव से अनेक जन्मों के संचित सब कर्मों को भस्म करनेवाले श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः।
तत्त्वं ज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ७४॥

श्रीगुरु से बढ़ कर कोई तत्त्व नहीं है, श्रीगुरु की सेवा से बढ़ कर कोई तप नहीं है, ज्ञान से बढ़ कर दूसरा कोई तत्त्व नहीं है, ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुस्त्रिजगद्गुरुः।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ७५॥

मेरे नाथ सारे जगत के नाथ हैं। मेरे गुरु तीनों जगत के गुरु हैं। मेरा आत्मा सर्वव्यापी सबमें रहनेवाला आत्मा है। यह अनुभव करानेवाले श्रीगुरु को नमस्कार है।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥ ७६ ॥

ध्यान का मूल आधार है श्रीगुरु की मूर्ति, पूजा का मूल है श्रीगुरु के चरण, मन्त्र का मूल है गुरु-वाक्य, मोक्ष का मूल है श्रीगुरु की कृपा।

गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परम-दैवतम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ७७ ॥

गुरु आदि हैं, अनादि हैं, गुरु परम देवता हैं। गुरुदेव से परे कुछ भी नहीं। ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

सप्तसागरपर्यन्त-तीर्थस्नानादिकं फलम्।
गुरोरङ्घ्रिपयोबिन्दु-सहस्रांशे न दुर्लभम्॥ ७८ ॥

सातों सागर तक के तीर्थों में स्नान करने से जो फल मिलता है, वह फल श्रीगुरुदेव के चरणोदक के एक बिन्दु के सहस्रवें भाग में ही सुलभ है।

हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं शरणं व्रजेत्॥ ७९ ॥

हरि के रुष्ट होने पर गुरु बचाते हैं, गुरु के रुष्ट होने पर कोई नहीं बचा सकता, इसलिए समस्त प्रयत्नों द्वारा श्रीगुरु की शरण में जाना चाहिए।

गुरुरेव जगत्सर्वं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात्सम्पूजयेद् गुरुम्॥ ८० ॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिवस्वरूप श्रीगुरु ही समग्र जगत हैं। गुरु से परे कुछ नहीं है, इसलिए श्रीगुरु का पूजन करना चाहिए।

ज्ञानं विज्ञानसहितं लभ्यते गुरुभक्तितः।
गुरोः परतरं नास्ति ध्येयोऽसौ गुरुमार्गिभिः॥८१॥

श्रीगुरु की भक्ति से ज्ञान और विज्ञान [आत्मा का अपरोक्ष ज्ञान तथा जगत का परोक्ष ज्ञान] प्राप्त होता है। गुरुदेव से श्रेष्ठ कुछ नहीं है, इसलिए सिद्धमार्गियों को उनका ध्यान करना चाहिए।

यस्मात्परतरं नास्ति नेति नेतीति वै श्रुतिः।
मनसा वचसा चैव नित्यमाराधयेद् गुरुम्॥८२॥

'नेति नेति' कह कर श्रुति ने बताया है कि गुरु से श्रेष्ठ कोई वस्तु नहीं है, इसलिए मन और वचन से सदा गुरुदेव की आराधना करनी चाहिए।

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मविष्णुसदाशिवाः।
समर्थाः प्रभवादौ च केवलं गुरुसेवया॥८३॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि भी गुरुकृपा के प्रसाद से केवल गुरुसेवा द्वारा विश्व की उत्पत्ति आदि में समर्थ हुए हैं।

देवकिन्नरगन्धर्वाः पितरो यक्षचारणाः।
मुनयोऽपि न जानन्ति गुरुशुश्रूषणे विधिम्॥८४॥

देव, किन्नर, गन्धर्व, पितर, यक्ष-चारण और मुनिजन भी गुरुसेवा की विधि नहीं जानते।

महाहङ्कारगर्वेण तपोविद्याबलान्विताः।
संसारकुहरावर्ते घटयन्त्रे यथा घटाः॥८५॥

तप, विद्या, बल से युक्त लोग अहंकार से भरे होने के कारण यहाँ संसार के भ्रम-चक्र में वैसे ही घूमते रहते हैं जैसे रहट के चक्के पर घड़ा घूमता है।

न मुक्ता देवगन्धर्वाः पितरो यक्षकिन्नराः।
ऋषयः सर्वसिद्धाश्च गुरुसेवापराङ्मुखाः॥ ८६॥

देव, गन्धर्व, किन्नर, पितर, यक्ष, ऋषि और सिद्ध भी यदि गुरुसेवा से पराङ्मुख हों तो कभी मुक्त नहीं हो सकते।

ध्यानं शृणु महादेवि सर्वानन्दप्रदायकम्।
सर्वसौख्यकरं नित्यं भुक्तिमुक्तिविधायकम्॥ ८७॥

हे महादेवी, सुनो। गुरुध्यान सर्व आनन्दप्रद, सर्व सुखप्रद, भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

श्रीमत्परब्रह्म गुरुं स्मरामि श्रीमत्परब्रह्म गुरुं वदामि।
श्रीमत्परब्रह्म गुरुं नमामि श्रीमत्परब्रह्म गुरुं भजामि॥ ८८॥

श्रीमत् परब्रह्म गुरु का मैं स्मरण करता हूँ। श्रीमत् परब्रह्म गुरु का मैं स्तवन करता हूँ। श्रीमत् परब्रह्म को मैं नमन करता हूँ। श्रीमत् परब्रह्म गुरु की मैं काया, वाचा, मन एवं कर्म से सेवा-आराधना करता हूँ।

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥ ८९॥

ब्रह्मानन्दरूप, परमसुखदाता, केवल ज्ञानस्वरूप, सुखदुःखादि द्वन्द्वरहित, आकाश के समान, तत्त्वमसि आदि वाक्यों के लक्ष्य, एक नित्य, विमल, निश्चल, सर्व प्राणियों की बुद्धि के साक्षी, भावातीत, तीनों गुणों से रहित ऐसे सद्गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ।

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरञ्जनम्।
नित्यबोधं चिदानन्दं गुरुं ब्रह्म नमाम्यहम्॥ ९० ॥

नित्य, शुद्ध, आभासरहित, निराकार, निरंजन, नित्यबोधस्वरूप, चिदानन्दस्वरूप, परब्रह्म गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

हृदम्बुजे कर्णिकमध्यसंस्थे
सिंहासने संस्थितदिव्यमूर्तिम्।
ध्यायेद्गुरुं चन्द्रकलाप्रकाशं
चित्पुस्तकाभीष्टवरं दधानम्॥ ९१ ॥

हृदय-कमल में कर्णिका के बीच विद्यमान सिंहासन पर विराजमान दिव्यमूर्ति, चन्द्रकला के समान प्रकाशरूप, एक हाथ में ज्ञानरूप पुस्तक और दूसरे हाथ में इष्ट वरदान देनेवाली वरमुद्रा धारण करनेवाले श्रीगुरु का ध्यान करना चाहिए।

श्वेताम्बरं श्वेतविलेपपुष्पं
मुक्ताविभूषं मुदितं द्विनेत्रम्।
वामाङ्कपीठस्थितदिव्यशक्तिं
मन्दस्मितं सान्द्रकृपानिधानम्॥ ९२ ॥

श्वेत वस्त्र, श्वेत विलेपन और श्वेत पुष्पों को धारण किये हुए, मोतियों से अलंकृत, आनन्दपूर्ण, दो, नेत्रवाले, जिनकी वामांक पीठिका पर

दिव्य शक्ति विराजमान है, मन्द मुस्कान युक्त, प्रगाढ़ कृपा के आगार गुरुदेव का ध्यान करना चाहिए।

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं
ज्ञानस्वरूपं निजबोधयुक्तम्।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं
श्रीमद्‌गुरुं नित्यमहं नमामि ॥ ९३ ॥

आनन्दस्वरूप, आनन्दप्रदाता, प्रसन्नमुख, ज्ञानस्वरूप, आत्मबोधयुक्त, योगीश्वर, स्तुति करने योग्य, संसाररूपी रोग के वैद्य श्रीगुरु को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

यस्मिन्सृष्टिस्थितिध्वंस-निग्रहानुग्रहात्मकम्।
कृत्यं पञ्चविधं शश्वद्भासते तं नमाम्यहम् ॥ ९४ ॥

जिनमें उत्पत्ति, स्थिति, लय, निग्रह और अनुग्रहरूप पंचकृत्य नित्य भासते हैं, उन गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम्।
वराभययुतं शान्तं स्मरेत् तं नामपूर्वकम् ॥ ९५ ॥

प्रातःकाल में, मस्तक के श्वेत-कमल में विराजित दो नेत्र और दो भुजावाले श्रेष्ठ, अभय मुद्रायुक्त, शान्त गुरुदेव के नाम और रूप का स्मरण करना चाहिए।

न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं
न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।
शिवशासनतः शिवशासनतः
शिवशासनतः शिवशासनतः ॥ ९६ ॥

गुरु से अधिक कुछ नहीं है; गुरु से अधिक कुछ नहीं है; गुरु से अधिक कुछ नहीं है; गुरु से अधिक कुछ नहीं है; यह शिवशासन है, यह शिवशासन है, यह शिवशासन है, यह शिवशासन है।

इदमेव शिवं त्विदमेव शिवं
त्विदमेव शिवं त्विदमेव शिवम्।
मम शासनतो मम शासनतो
मम शासनतो मम शासनतः॥ ९७॥

यह गुरुतत्त्व ही कल्याणकारी है; यही कल्याणकारी है; यही कल्याणकारी है; यही कल्याणकारी है; यह मेरा शासन है, मेरा शासन है, मेरा शासन है, मेरा शासन है।

एवंविधं गुरुं ध्यात्वा ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम्।
तत्सद्गुरुप्रसादेन मुक्तोऽहमिति भावयेत्॥ ९८॥

इस प्रकार [श्लोक ८८ से ९५ तक वर्णित] गुरुध्यान करने से ज्ञान अपने आप ही उत्पन्न होता है। उन सद्गुरु के प्रसाद से "मैं मुक्त हूँ" ऐसी भावना करनी चाहिए।

गुरुदर्शित-मार्गेण मनःशुद्धिं तु कारयेत्।
अनित्यं खण्डयेत्सर्वं यत्किञ्चिदात्मगोचरम्॥ ९९॥

गुरु के बताये हुए मार्ग से मन की शुद्धि करनी चाहिए। मन और इन्द्रियों द्वारा गोचर विषयरूप सभी अनित्य पदार्थों का त्याग करना चाहिए।

ज्ञेयं सर्वस्वरूपं च ज्ञानं च मन उच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयसमं कुर्यान् नान्यः पन्था द्वितीयकः॥ १०० ॥

सर्व का स्वस्वरूप आत्मा ज्ञेय है और ज्ञान को मन कहा गया है। [क्योंकि मन द्वारा 'ज्ञान' होता है] ज्ञान अर्थात् मन को ज्ञेयसम अर्थात् आत्मा के तुल्य करना चाहिए, मोक्षप्राप्ति के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

एवं श्रुत्वा महादेवि गुरुनिन्दां करोति यः।
स याति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ १०१ ॥

हे महादेवी, यह गुरुमहिमा सुन कर भी जो गुरु की निन्दा करता है वह जब तक चन्द्र और सूर्य हैं, तब तक घोर नरक में रहता है।

यावत्कल्पान्तको देहस्तावदेव गुरुं स्मरेत्।
गुरुलोपो न कर्तव्यः स्वच्छन्दो यदि वा भवेत्॥ १०२ ॥

हे देवी! देह रहे तब तक, कल्प के अन्त भी गुरु-स्मरण करना चाहिए। शिष्य के स्वच्छन्द अथवा मुक्त होने पर भी उसे गुरु का लोप नहीं करना चाहिए, अर्थात् गुरु से पराङ्मुख नहीं होना चाहिए।

हुंकारेण न वक्तव्यं प्राज्ञैः शिष्यैः कथञ्चन।
गुरोरग्रे न वक्तव्यमसत्यं च कदाचन॥ १०३ ॥

विवेकी शिष्य कभी गुरु के सामने हुँकार करके न बोले; तथा उनके सम्मुख असत्य भाषण न करे।

गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य गुरुं निर्जित्य वादतः।
अरण्ये निर्जले देशे स भवेद् ब्रह्मराक्षसः॥ १०४ ॥

गुरु के सामने जो शिष्य हुँकार-तुँकार करके बोलता है और गुरु को वाद-विवाद से जीतने का प्रयत्न करता है, वह निर्जल अरण्य में ब्रह्मराक्षस होता है।

मुनिभिः पन्नगैर्वाऽपि सुरैर्वा शापितो यदि।
कालमृत्युभयाद् वापि गुरु रक्षति पार्वति ॥ १०५ ॥

हे पार्वती! मुनियों, सर्पों अथवा देवताओं ने यदि शाप दिया हो तो उससे और काल तथा मृत्यु के भय से भी गुरु रक्षण करते हैं।

अशक्ता हि सुराद्याश्च अशक्ता मुनयस्तथा।
गुरुशापेन ते शीघ्रं क्षयं यान्ति न संशयः ॥ १०६ ॥

जिसको गुरु ने शाप दिया हो, उसका रक्षण करने के लिए देवता या मुनि भी समर्थ नहीं है। गुरु के शाप से वह जल्दी ही नष्ट होता है, इसमें संशय नहीं।

मन्त्रराजमिदं देवि गुरुरित्यक्षर-द्वयम्।
स्मृतिवेदार्थवाक्येन गुरुः साक्षात्परं पदम् ॥ १०७ ॥

हे देवी, 'गुरु' यह दो अक्षरवाला शब्द महामन्त्र है। श्रुति और स्मृति भी कहती हैं कि गुरु साक्षात् परम पद याने परब्रह्म हैं।

श्रुतिस्मृतिअविज्ञाय केवलं गुरुसेवकाः।
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेषधारिणः ॥ १०८ ॥

श्रुति और स्मृति को न जानने पर भी केवल गुरु-सेवा करनेवाला ही संन्यासी है, दूसरे केवल वेशधारी संन्यासी हैं।

नित्यं ब्रह्म निराकारं निर्गुणं बोधयेत्परम्।
सर्वं ब्रह्म निराभासं दीपो दीपान्तरं यथा॥ १०९॥

जिस प्रकार एक दीपक दूसरे दीपक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार शिष्य को जो नित्य, निराकार, निर्गुण, निराभास परब्रह्म का बोध कराते हैं, वे गुरु हैं।

गुरोः कृपाप्रसादेन आत्मारामं निरीक्षयेत्।
अनेन गुरुमार्गेण स्वात्मज्ञानं प्रवर्तते॥ ११०॥

श्रीगुरुदेव का कृपा-प्रसाद प्राप्त करके शिष्य को आत्मा का ध्यान करना चाहिए। इस गुरुमार्ग से अपने स्वरूप का ज्ञान होता है।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं परमात्मस्वरूपकम्।
स्थावरं जङ्गमं चैव प्रणमामि जगन्मयम्॥ १११॥

ब्रह्म से ले कर स्तम्ब [तृण] पर्यन्त, स्थावर-जंगम परमात्मा का ही स्वरूप है। ऐसे जगन्मय श्रीगुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ।

वन्देऽहं सच्चिदानन्दं भेदातीतं सदा गुरुम्।
नित्यं पूर्णं निराकारं निर्गुणं स्वात्मसंस्थितम्॥ ११२॥

सच्चिदानन्दस्वरूप, भेदरहित, नित्य, पूर्ण, निराकार, निर्गुण स्वात्मा में अवस्थित श्री गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

परात्परतरं ध्येयं नित्यमानन्दकारकम्।
हृदयाकाशमध्यस्थं शुद्धस्फटिकसन्निभम्॥ ११३॥

स्फटिकप्रतिमारूपं दृश्यते दर्पणे यथा।
तथात्मनि चिदाकारमानन्दं सोऽहमित्युत॥ ११४॥

परे से भी परे, नित्य आनन्दकारक, शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल, हृदयाकाश के मध्य स्थित, गुरुदेव [परमात्मा] का ध्यान करना चाहिए। जैसे दर्पण में शुद्ध स्फटिक की प्रतिमा दिखाई देती है, वैसे ही आत्मा में चिदाकार आनन्दस्वरूप 'वही मैं हूँ', यह 'सोऽहं' भाव प्रकट होता है।

अङ्गुष्ठमात्रपुरुषं ध्यायतश्चिन्मयं हृदि।
तत्र स्फुरति भावो यः शृणु तं कथयाम्यहम्॥ ११५॥

हृदय में अंगुष्ठ-प्रमाण चिन्मय आत्मा का ध्यान करते हुए, जो भाव स्फुरित होता है, वह मैं तुम्हें बताता हूँ, सुनो।

अगोचरं तथाऽगम्यं नामरूपविवर्जितम्।
निःशब्दं तद्विजानीयात् स्वभावं ब्रह्म पार्वति॥ ११६॥

हे पार्वती! ब्रह्म का निज स्वरूप अगोचर, अगम्य, नाम-रूपरहित, निःशब्द [शब्दरहित] है, उसे जानना चाहिए।

यथा गन्धः स्वभावेन कर्पूरकुसुमादिषु।
शीतोष्णादिस्वभावेन तथा ब्रह्म च शाश्वतम्॥ ११७॥

जैसे कर्पूर और पुष्पादि में सुगन्ध स्वाभाविक है, जैसे सर्दी-गर्मी स्वाभाविक है, वैसे ही ब्रह्म भी शाश्वत है।

स्वयं तथाविधो भूत्वा स्थातव्यं यत्र कुत्रचित्।
कीटभ्रमरवत् तत्र ध्यानं भवति तादृशम्॥ ११८॥

इस प्रकार ब्रह्मरूप हो कर संसार में कहीं भी रहो। कीट जैसे भ्रमर के ध्यान से भ्रमर ही बन जाता है, वैसे ही ब्रह्म के ध्यान से जीवात्मा भी ब्रह्म ही बन जाता है।

गुरुध्यानं तथा कृत्वा स्वयं ब्रह्ममयो भवेत्।
पिण्डे पदे तथा रूपे मुक्तोऽसौ नात्र संशयः॥ ११९॥

अन्तःकरण में गुरु का वैसा ध्यान करते हुए शिष्य ब्रह्ममय बन जाता है; पिण्ड में, पद में, रूप में वह मुक्त है इसमें संशय नहीं।

श्रीपार्वत्युवाच
पिण्डं किं तु महादेव पदं किं समुदाहृतम्।
रूपातीतं च रूपं किमेतदाख्याहि शङ्कर॥ १२०॥

पार्वती बोलीं
हे महादेव, पिण्ड क्या है? पद किसको कहते हैं? हे शंकर, रूप एवं रूपातीत क्या है, यह विस्तार से कहिए।

श्रीमहादेव उवाच
पिण्डं कुण्डलिनीशक्तिः पदं हंसमुदाहृतम्।
रूपं बिन्दुरिति ज्ञेयं रूपातीतं निरञ्जनम्॥ १२१॥

महादेव ने कहा
हे देवी! कुण्डलिनी शक्ति को पिण्ड कहते हैं, 'हंस' को पद कहते हैं, 'बिन्दु' को रूप कहते हैं और निरंजन, निराकार को रूपातीत कहते हैं।

पिण्डे मुक्ता पदे मुक्ता रूपे मुक्ता वरानने।
रूपातीते तु ये मुक्तास्ते मुक्ता नात्र संशयः॥ १२२॥

हे सुमुखि! जिसकी कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हुई है वह पिण्ड में मुक्त है, जिसका हंस पद में प्राण स्थिर हुआ है वह पद में मुक्त है और जिसको आत्मज्योतिरूप नीलबिन्दु का दर्शन हुआ है वह रूप में मुक्त है। जो निरंजन, निराकार, निर्विकल्प स्थिति में है, वही यथार्थ में मुक्त है, इसमें संशय नहीं।

स्वयं सर्वमयो भूत्वा परं तत्त्वं विलोकयेत्।
परात्परतरं नान्यत् सर्वमेतन्निरालयम्॥ १२३॥

साधक को स्वयं सर्वमय बन कर उस परम तत्त्व को देखना चाहिए, उस परम तत्त्व से परे कुछ नहीं है, यह सब कुछ निराश्रय है।

तस्यावलोकनं प्राप्य सर्वसङ्गविवर्जितः।
एकाकी निःस्पृह शान्तस्तिष्ठासेत् तत्प्रसादतः॥ १२४॥

उस परम तत्त्व का साक्षात्कार करने के अनन्तर साधक, श्रीगुरु की कृपा से सब आसक्तियों से रहित, अकेला, निःस्पृह, शान्त हो कर स्थिर हो जाता है।

लब्धं वाऽथ न लब्धं वा स्वल्पं वा बहुलं तथा।
निष्कामेनैव भोक्तव्यं सदा सन्तुष्टचेतसा॥ १२५॥

इष्ट की प्राप्ति हो या न हो, थोड़ी हो या अधिक हो, तो भी कामनारहित हो कर सदा सन्तुष्टचित्त से उसे भोगना चाहिए।

सर्वज्ञ-पदमित्याहुर्देही सर्वमयो बुधाः।
सदानन्दः सदा शान्तो रमते यत्र कुत्रचित्॥ १२६॥

ज्ञानी लोग उस पद को सर्वज्ञपद कहते हैं, जिस पद को पा कर देही जीव सर्वात्ममय बन जाता है और सदा शान्त हो कर, सदा आनन्द से, कहीं पर भी रहते हुए रमण करता है।

यत्रैव तिष्ठते सोऽपि स देशः पुण्यभाजनम्।
मुक्तस्य लक्षणं देवि तवाग्रे कथितं मया॥ १२७॥

वह जहाँ निवास करता है, वह देश पुण्यभूमि है। हे देवी, मैंने तुम्हारे सामने मुक्त पुरुष के लक्षणों का वर्णन किया है।

उपदेशस्तथा देवि गुरुमार्गेण मुक्तिदः।
गुरुभक्तिस्तथा ध्यानं सकलं तव कीर्तितम्॥ १२८॥

हे देवी, गुरुमार्ग द्वारा मुक्ति देनेवाला उपदेश, गुरुभक्ति तथा ध्यान यह सब मैंने तुम्हें बताया है।

अनेन यद्भवेत्कार्यं तद्वदामि महामते।
लोकोपकारकं देवि लौकिकं तु न भावयेत्॥ १२९॥

हे महाबुद्धिशालिनी, इस [उपदेश, गुरुभक्ति तथा ध्यान] से जो कार्य सिद्ध होते हैं, वह कहता हूँ। इसका उपयोग लोक-कल्याण के लिए करना चाहिए, लौकिक कार्यों के लिए नहीं।

लौकिकात्कर्मणो यान्ति ज्ञानहीना भवार्णवम्।
ज्ञानी तु भावयेत्सर्वं कर्म निष्कर्म यत्कृतम्॥ १३०॥

जो ज्ञानहीन लोग लौकिक कार्य के लिए इसका उपयोग करते हैं, वे संसाररूपी समुद्र में भटकते रहते हैं, परन्तु ज्ञानी के किये हुए सब कर्म निष्कर्म बन जाते हैं [उसे कर्म का फल भोगना नहीं पड़ता]।

इदं तु भक्तिभावेन पठते शृणुते यदि।
लिखित्वा तत्प्रदातव्यं तत्सर्वं सफलं भवेत्॥ १३१॥

यह गुरुगीता भक्तिभाव पूर्वक पढ़ने से, सुनने से और लिख कर देने से सर्वफल की प्राप्ति होती है।

गुरुगीतात्मकं देवि शुद्धतत्त्वं मयोदितम्।
भवव्याधिविनाशार्थं स्वयमेव जपेत्सदा॥ १३२॥

हे देवी, गुरुगीतारूपी शुद्ध तत्त्व मैंने तुमसे कहा। भवव्याधि का नाश करने के लिए सदा स्वयं उसका जप करना चाहिए।

गुरुगीताक्षरैकं तु मन्त्रराजमिमं जपेत्।
अन्ये च विविधा मन्त्राः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ १३३॥

इस गुरुगीता का एक-एक अक्षर परम मन्त्र है। अन्य अनेक मन्त्र इसकी सोलहवीं कला के तुल्य भी नहीं हैं।

अनन्तफलमाप्नोति गुरुगीताजपेन तु।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदारिद्र्यनाशनम्॥ १३४॥

गुरुगीता का पाठ करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है, सर्व पाप नष्ट होते हैं और सर्व प्रकार की दरिद्रता का नाश होता है।

कालमृत्युभयहरं सर्वसङ्कटनाशनम्।
यक्षराक्षसभूतानां चोरव्याघ्रभयापहम्॥१३५॥

गुरुगीता का यह जप काल-मृत्यु के भय को दूर करनेवाला, सर्व संकटों का नाश करनेवाला और यक्ष, राक्षस, भूत, चोर, व्याघ्रादि के भय को हरण करनेवाला है।

महाव्याधिहरं सर्वं विभूतिसिद्धिदं भवेत्।
अथवा मोहनं वश्यं स्वयमेव जपेत्सदा॥१३६॥

इससे सर्व प्रकार की महाव्याधियाँ दूर होती हैं। सर्व सिद्धियाँ व अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं तथा सम्मोहन, वशीकरण आदि की प्राप्ति होती है। इसका स्वयं जप करना चाहिए।

वस्त्रासने च दारिद्र्यं पाषाणे रोगसम्भवः।
मेदिन्यां दुःखमाप्नोति काष्ठे भवति निष्फलम्॥१३७॥

वस्त्रासन पर बैठ कर जप करने से दरिद्रता, पत्थर पर रोग की उत्पत्ति और पृथ्वी पर बैठ कर जप करने से दुःख-प्राप्ति होती है; काष्ठ पर बैठ कर जप करने से जप निष्फल होता है।

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि।
कुशासने ज्ञानसिद्धिः सर्वसिद्धिस्तु कम्बले॥१३८॥

कृष्ण मृगचर्म पर बैठ कर जप करने से ज्ञान की प्राप्ति, व्याघ्रचर्म पर मोक्ष की प्राप्ति, दर्भासन पर ज्ञानसिद्धि और कम्बल पर सर्वसिद्धि होती है।

कुशैर्वा दूर्वया देवि आसने शुभ्रकम्बले।
उपविश्य ततो देवि जपेदेकाग्रमानसः ॥ १३९ ॥

हे देवी! इस गुरुगीता का स्वाध्याय, दर्भ या दूर्वा के आसन पर या श्वेत कम्बल के आसन पर बैठ कर एकाग्र मन से करना चाहिए।

ध्येयं शुक्लं च शान्त्यर्थं वश्ये रक्तासनं प्रिये।
अभिचारे कृष्णवर्णं पीतवर्णं धनागमे ॥ १४० ॥

शान्ति के लिए श्वेत आसन, वशीकरण के लिए लाल आसन, सम्मोहन के लिए कृष्ण आसन और धनप्राप्ति के लिए पीला आसन उपयुक्त है।

उत्तरे शान्तिकामस्तु वश्ये पूर्वमुखो जपेत्।
दक्षिणे मारणं प्रोक्तं पश्चिमे च धनागमः ॥ १४१ ॥

शान्ति की कामनावाला उत्तर दिशा की ओर मुख करके जप करे, वशीकरण सिद्ध करने की इच्छावाला पूर्व की ओर, मारण की इच्छावाला दक्षिण की ओर और धनप्राप्ति की इच्छा रखनेवाला पश्चिम की ओर मुख करके जप करे।

मोहनं सर्वभूतानां बन्धमोक्षकरं भवेत्।
देवराजप्रियकरं सर्वलोकवशं भवेत् ॥ १४२ ॥

इस गुरुगीता के पाठ से सर्व प्राणियों का सम्मोहन, सर्व बन्धनों से मुक्ति, देव और राजा की प्रीति और सर्व लोगों का वशीकरण होता है।

सर्वेषां स्तम्भनकरं गुणानां च विवर्धनम्।
दुष्कर्म-नाशनं चैव सुकर्मसिद्धिदं भवेत्॥ १४३॥

इस गुरुगीता के पाठ से सब अनिष्टों का स्तम्भन, गुणों की वृद्धि, दुष्कर्म का नाश और सत्कर्म की सिद्धि होती है।

असिद्धं साधयेत् कार्यं नवग्रहभयापहम्।
दुःस्वप्न-नाशनं चैव सुस्वप्न-फलदायकम्॥ १४४॥

असिद्ध कार्य सिद्ध होता है, नवग्रहों की पीड़ा दूर होती है, दुःस्वप्न दूर होता है, सुस्वप्न का फल मिलता है।

सर्वशान्तिकरं नित्यं तथा वन्ध्यासुपुत्रदम्।
अवैधव्यकरं स्त्रीणां सौभाग्यदायकं सदा॥ १४५॥

इसके पाठ से सर्व प्रकार की शान्ति होती है, वन्ध्या स्त्री को पुत्रप्राप्ति होती है। अवैधव्य तथा सौभाग्य की वृद्धि होती है।

आयुरारोग्यमैश्वर्य-पुत्र-पौत्र-प्रवर्धनम्।
अकामतः स्त्री विधवा जपान्मोक्षमवाप्नुयात्॥ १४६॥

इसके पाठ से आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य, पुत्र-पौत्र की वृद्धि होती है। विधवा स्त्री यदि निष्काम भाव से इसका पाठ करे तो उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

अवैधव्यं सकामा तु लभते चान्यजन्मनि।
सर्वदुःखभयं विघ्नं नाशयेच्छापहारकम्॥ १४७॥

सकाम भाव से इसका पाठ करने से दूसरे जन्म में वह अवैधव्य को प्राप्त करती है। गुरुगीता का पाठ सर्व दुःख, भय, विघ्न तथा शाप को नष्ट करता है।

सर्व-बाधा-प्रशमनं धर्मार्थ-काम-मोक्षदम्।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्॥ १४८॥

इसके पाठ से सभी विघ्न शान्त होते हैं; धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है। साधक, जिन-जिन विषयों का चिन्तन करता है, वे सब उसे निश्चित प्राप्त होते हैं।

कामितस्य कामधेनुः कल्पनाकल्पपादपः।
चिन्तामणिश्चिन्तितस्य सर्वमङ्गलकारकम्॥ १४९॥

इस गुरुगीता का पाठ, कामनावालों के लिए कामधेनु है, कल्पना करनेवालों के लिए कल्पवृक्ष है, चिन्तन करनेवालों के लिए चिन्तामणि है, वह सर्व मंगल कारक है।

मोक्षहेतुर्जपेन्नित्यं मोक्षश्रियमवाप्नुयात्।
भोगकामो जपेद्यो वै तस्य कामफलप्रदम्॥ १५०॥

मोक्ष की इच्छा से जो नित्य इसका जप करता है, वह मोक्ष-लक्ष्मी को प्राप्त करता है और जो भोग की कामना से करता है, उसको इच्छित फल की प्राप्ति होती है।

जपेच्छाक्तश्च सौरश्च गाणपत्यश्च वैष्णवः।
शैवश्च सिद्धिदं देवि सत्यं सत्यं न संशयः॥ १५१॥

शक्ति के उपासक, सूर्योपासक, गणपति, विष्णु और शिव के उपासकों को सत्य ही सिद्धिप्रद गुरुगीता का जप करना चाहिए, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

अथ काम्यजपे स्थानं कथयामि वरानने।
सागरे वा सरित्तीरेऽथवा हरिहरालये॥ १५२॥

शक्तिदेवालये गोष्ठे सर्व देवालये शुभे।
वटे च धात्रीमूले वा मठे वृन्दावने तथा॥ १५३॥

पवित्रे निर्मले स्थाने नित्यानुष्ठानतोऽपि वा।
निर्वेदनेन मौनेन जपमेतं समाचरेत्॥ १५४॥

हे सुमुखि, काम्य-फल की प्राप्ति के हेतु किये जानेवाले जप के स्थानों का वर्णन करता हूँ। समुद्र या नदी के किनारे, शिव या विष्णु के मन्दिर में, शक्ति के देवालय में, गोशाला में, सब देवालयों में, वटवृक्ष या धतूरे के वृक्ष के मूल में, मठ में, तुलसीवन में तथा पवित्र निर्मल स्थान में नित्य अनुष्ठान करते हुए शान्त और मौन भाव से इसका जप करना चाहिए।

श्मशाने भयभूमौ तु वटमूलान्तिके तथा।
सिध्यन्ति धौत्तरे मूले चूतवृक्षस्य सन्निधौ॥ १५५॥

श्मशान में, भय, भूमि में, वट-मूल के निकट, धतूरे के मूल में तथा आम्रवृक्ष के निकट इसका पाठ करने से सिद्धि होती है।

गुरुपुत्रो वरं मूर्खस्तस्य सिध्यन्ति नान्यथा।
शुभकर्माणि सर्वाणि दीक्षाव्रततपांसि च॥ १५६॥

गुरु-पुत्र मूर्ख [अनपढ़, मन्दबुद्धिवाला] होने पर भी उसके दीक्षा, व्रत, तप आदि शुभकार्य सिद्ध होते हैं, व्यर्थ नहीं होते।

संसारमल-नाशार्थं भवपाशनिवृत्तये।
गुरुगीताम्भसि स्नानं तत्त्वज्ञः कुरुते सदा॥ १५७॥

संसार के मलों का नाश करने के लिए, भवबन्धन से मुक्त होने के लिए तत्त्वज्ञानी गुरुगीतारूपी जल में सदा स्नान करते हैं।

स एव च गुरुः साक्षात् सदा सद्ब्रह्मवित्तमः।
तस्य स्थानानि सर्वाणि पवित्राणि न संशयः॥ १५८॥

जो सद्ब्रह्म को जाननेवालों में श्रेष्ठ हैं, वे ही साक्षात् गुरु हैं। गुरु जिन स्थानों में निवास करते हैं, वे सभी स्थान पवित्र हैं, इसमें संशय नहीं।

सर्वशुद्धः पवित्रोऽसौ स्वभावाद्यत्र तिष्ठति।
तत्र देवगणाः सर्वे क्षेत्रे पीठे वसन्ति हि॥ १५९॥

सर्व शुद्ध और पवित्र गुरुदेव जहाँ भी स्वभावतः रहते हैं, उस क्षेत्र या पीठ में समस्त देवताओं का समुदाय निवास करता है।

आसनस्थः शयानो वा गच्छंस्तिष्ठन् वदन्नपि।
अश्वारूढो गजारूढः सुप्तो वा जागृतोऽपि वा॥ १६०॥

शुचिष्मांश्च सदा ज्ञानी गुरुगीताजपेन तु।
तस्य दर्शनमात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते॥ १६१॥

आसन पर बैठा हो, सोता हो, चलता हो, घोड़े पर बैठा हो, हाथी पर सवारी किये हो, सुषुप्ति में हो या जागता हो, ऐसा नित्य ज्ञानी पुरुष,

जो गुरुगीता के जप से पवित्र बन गया है, यदि उपर्युक्त अवस्था में उसके दर्शन हों तो दर्शनमात्र से पुनर्जन्म नहीं होता।

समुद्रे च यथा तोयं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम्।
भिन्ने कुम्भे यथाकाशस्तथात्मा परमात्मनि॥ १६२॥

जैसे समुद्र में पानी, दूध में दूध, घी में घी और आकाश में घटाकाश मिल जाता है, वैसे परमात्मा में जीवात्मा मिल जाता है।

तथैव ज्ञानी जीवात्मा परमात्मनि लीयते।
ऐक्येन रमते ज्ञानी यत्र तत्र दिवानिशम्॥ १६३॥

और इसी प्रकार ज्ञानी जीवात्मा परमात्मा में लीन होता है। इस एकत्व को प्राप्त करनेवाला ज्ञानी रात-दिन कहीं भी आनन्द में मग्न रहता है।

एवंविधो महामुक्तः सर्वदा वर्तते बुधः।
तस्य सर्वप्रयत्नेन भावभक्तिं करोति यः॥ १६४॥

सर्वसन्देहरहितो मुक्तो भवति पार्वति।
भुक्तिमुक्तिद्वयं तस्य जिह्वाग्रे च सरस्वती॥ १६५॥

इस प्रकार ज्ञानी सदा जीवन्मुक्त हो कर रहता है। जो साधक सर्व प्रयत्नपूर्वक भावपूर्ण हो कर उसकी भक्ति करता है, वह सन्देहरहित हो कर मुक्त होता है। वह भुक्ति और मुक्ति दोनों को प्राप्त करता है, उसकी जिह्वा के अग्रभाग पर सरस्वती वास करती हैं।

अनेन प्राणिनः सर्वे गुरुगीताजपेन तु।
सर्वसिद्धिं प्राप्नुवन्ति भुक्तिं मुक्तिं न संशयः॥ १६६॥

गुरुगीता के जप से सब प्राणी सर्व सिद्धियों को प्राप्त करते हैं तथा उन्हें भोग और मोक्ष, दोनों की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं धर्म्यं साङ्ख्यं मयोदितम्।
गुरुगीतासमं नास्ति सत्यं सत्यं वरानने॥ १६७॥

मेरे द्वारा कहा गया यह धर्मयुक्त ज्ञान सत्य है, सत्य है, पूर्ण सत्य है। हे सुमुखि, गुरुगीता के समान सत्यतः और कुछ नहीं है।

एको देव एकधर्म एकनिष्ठा परं तपः।
गुरोः परतरं नान्यन्नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्॥ १६८॥

एक ही देव, एक ही धर्म, एक ही निष्ठा, यह परम श्रेष्ठ तप है। गुरु से परे कुछ नहीं है; गुरु से आगे अन्य कोई तत्त्व नहीं है।

माता धन्या पिता धन्यो धन्यो वंशः कुलं तथा।
धन्या च वसुधा देवि गुरुभक्तिः सुदुर्लभा॥ १६९॥

हे देवी! गुरुभक्त के माता-पिता, कुल, वंश और पृथ्वी भी धन्य हैं। गुरुभक्ति बहुत ही दुर्लभ है।

शरीरमिन्द्रियं प्राणाश्चार्थ-स्वजनबान्धवाः।
माता पिता कुलं देवि गुरुरेव न संशयः॥ १७०॥

हे देवी! शरीर, इन्द्रिय, प्राण, धन, स्वजन, बान्धव, माता-पिता, कुल, सब कुछ गुरु हैं, इसमें संशय नहीं है।

आकल्पजन्मना कोट्या जपव्रततपः क्रियाः।
तत्सर्वं सफलं देवि गुरुसन्तोषमात्रतः॥ १७१॥

हे देवी! कल्पपर्यन्त या करोड़ों जन्म के जप, व्रत, तप और दूसरी शास्त्रोक्त क्रियाएँ, ये सब एक मात्र गुरु को सन्तुष्ट करने से सफल होती हैं।

विद्यातपोबलेनैव मन्दभाग्याश्च ये नराः।
गुरुसेवां न कुर्वन्ति सत्यं सत्यं वरानने॥ १७२॥

ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च देवर्षिपितृकिन्नराः।
सिद्धचारणयक्षाश्च अन्येऽपि मुनयो जनाः॥ १७३॥

हे सुन्दरी! विद्याबल या तपोबल से गर्वित जो मानव एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवर्षि, पितर, किन्नर, सिद्ध-चारण, यक्ष तथा अन्य मुनिजन गुरुसेवा नहीं करते, वे वास्तव में बड़े अभागे हैं।

गुरुभावः परं तीर्थमन्यतीर्थं निरर्थकम्।
सर्वतीर्थाश्रयं देवि पादाङ्गुष्ठं च वर्तते॥ १७४॥

गुरुभाव यह श्रेष्ठ तीर्थ है, अन्य तीर्थ निरर्थक हैं। हे देवी, श्रीगुरु के चरण के अँगूठे के आश्रय में तीर्थ रहते हैं।

जपेन जयमाप्नोति चानन्तफलमाप्नुयात्।
हीनकर्म त्यजन्सर्वं स्थानानि चाधमानि च॥ १७५॥

इस गुरुगीता का जप करने से मनुष्य जय प्राप्त करता है और अनन्त फल पाता है। हीन कर्म और अधम स्थानों को त्याग कर इस जप को करना चाहिए।

जपं हीनासनं कुर्वन् हीनकर्मफलप्रदम्।
गुरुगीतां प्रयाणे वा सङ्ग्रामे रिपुसङ्कटे॥ १७६॥

जपञ्जयमवाप्नोति मरणे मुक्तिदायकम्।
सर्वकर्म च सर्वत्र गुरुपुत्रस्य सिध्यति॥ १७७॥

हीनासन पर गुरुगीता का जप करना हीन फल देनेवाला है। प्रस्थान के समय, शत्रु का संकट उपस्थित होने पर जप करने से जय की प्राप्ति होती है और मरने पर यह जप मुक्ति देता है। गुरुपुत्र के सभी कर्म सर्वत्र सिद्ध होते हैं।

इदं रहस्यं नो वाच्यं तवाग्रे कथितं मया।
सुगोप्यं च प्रयत्नेन मम त्वं च प्रिया त्विति॥ १७८॥

तुम मेरी अत्यन्त प्रिय हो, इसीलिए गुरुगीता का यह रहस्य मैंने तुम्हारे सामने कहा है। वह किसी के समक्ष भी प्रकट नहीं करना; प्रयत्नपूर्वक इसे गुप्त रखना।

स्वामिमुख्यगणेशादि-विष्ण्वादीनां च पार्वति।
मनसापि न वक्तव्यं सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ १७९॥

हे पार्वती! कार्तिकस्वामी, गणेश आदि मुख्य गण तथा विष्णु आदि देवों को भी मन से भी मत कहना; मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ।

अतीव पक्वचित्ताय श्रद्धाभक्तियुताय च।
प्रवक्तव्यमिदं देवि ममात्माऽसि सदा प्रिये॥ १८०॥

हे देवी, जिसका चित्त पूर्ण परिपक्व और श्रद्धा तथा भक्तियुक्त हो, उससे यह उपदेश कहना। हे प्रिये, तुम सदा मेरी आत्मा हो।

अभक्ते वञ्चके धूर्ते पाखण्डे नास्तिके नरे।
मनसापि न वक्तव्या गुरुगीता कदाचन॥१८१॥

अभक्त, ठग, नीच, पाखण्डी और नास्तिक मनुष्य को गुरुगीता कहने का कभी मन से भी विचार नहीं करना चाहिए।

संसारसागर-समुद्धरणैकमन्त्रं
ब्रह्मादिदेवमुनिपूजितसिद्धमन्त्रम्।
दारिद्र्यदुःखभवरोगविनाशमन्त्रं
वन्दे महाभयहरं गुरुराज-मन्त्रम्॥१८२॥

संसाररूपी सागर से उद्धार करनेवाला जो एकमात्र मन्त्र है; ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्रादि देवों तथा नारद आदि सब मुनियों से पूजित जो सिद्धमन्त्र है; दरिद्रता, दुःख आदि सारे भवरोगों को नष्ट करनेवाला जो मन्त्र है; जो मृत्युरूपी महाभय का हरण करता है, ऐसे सर्वश्रेष्ठ गुरुगीतारूप गुरुमन्त्र को मैं नमन करता हूँ।

इति श्रीस्कन्दपुराणे उत्तरखण्डे ईश्वरपार्वतीसंवादे गुरुगीता समाप्ता।

इस प्रकार स्कन्दपुराण के उत्तर खण्ड में ईश्वर-पार्वती-संवादरूप श्रीगुरुगीता सम्पूर्ण हुई।

श्रीगुरुदेवचरणार्पणमस्तु॥

श्रीगुरुदेव के चरणों में अर्पण हो।

सद्‌गुरु की आरती

आरती करूँ सद्‌गुरु की करूँ सद्‌गुरु की
प्यारे गुरुवर की, आरती करूँ गुरुवर की।

जय गुरुदेव अमल अविनाशी, ज्ञानरूप अन्तर के वासी, [२]
पग-पग पर देते प्रकाश, जैसे किरणें दिनकर की।
आरती करूँ गुरुवर की॥ १ ॥

जब से शरण तुम्हारी आये, अमृत-से मीठे फल पाये, [२]
शरण तुम्हारी क्या है छाया, कल्पवृक्ष तरुवर की।
आरती करूँ गुरुवर की॥ २ ॥

ब्रह्मज्ञान के पूर्ण प्रकाशक, योगज्ञान के अटल प्रवर्तक, [२]
जय गुरुचरणसरोज मिटा दी, व्यथा हमारे उर की।
आरती करूँ गुरुवर की॥ ३ ॥

अन्धकार से हमें निकाला, दिखलाया है अमर उजाला, [२]
कब से जाने छान रहे थे, खाक सुनो दर-दर की।
आरती करूँ गुरुवर की॥ ४ ॥

संशय मिटा विवेक कराया, भवसागर से पार लँघाया, [२]
अमर प्रदीप जला कर कर दी, निशा दूर इस तन की।
आरती करूँ गुरुवर की॥ ५ ॥

भेदों बीच अभेद बताया, आवागमन विमुक्त कराया, [२]
धन्य हुए हम पा कर धारा ब्रह्मज्ञान निर्झर की।
आरती करूँ गुरुवर की॥ ६ ॥

करो कृपा सद्गुरु जगतारन, सत्पथदर्शक भ्रान्ति निवारन, [२]
जय हो नित्य ज्योति दिखलानेवाले लीलाधर की।
आरती करूँ गुरुवर की ॥ ७ ॥

मुक्तानन्द हे सद्गुरु दाता, शक्तिपात के दिव्य प्रदाता, [२]
करके वास गणेशपुरी, भवबाधा हर ली जन की।
आरती करूँ गुरुवर की॥ ८ ॥

ॐ चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम्।
नादबिन्दुकलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

जो चैतन्यस्वरूप, शाश्वत, शान्त, आकाश से परे, निरंजन, नादातीत, द्वन्द्वातीत, कलातीत हैं, उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

सद्गुरुनाथ महाराज की जय।

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे,
हे नाथ नारायण वासुदेव।
हे नाथ नारायण वासुदेव।
हे नाथ नारायण वासुदेव।

त्वमेव माता

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

हे प्रभो, आप ही मेरी माता हैं, पिता भी आप हैं, बन्धु भी आप हैं और मित्र भी आप हैं, आप ही विद्या हैं और आप ही धन हैं। हे देवों के देव महादेव! आप ही मेरा सर्वस्व हैं।

दूर करो दुःख दर्द सब, दया करो भगवान।
मन मन्दिर में उज्ज्वल हो तेरा निर्मल ज्ञान॥

जिस घर में हो आरती चरणकमल चित लाग।
तहाँ हरि वासा करें ज्योत अनन्त जगाय॥

जहाँ भक्त कीर्तन करें, बहे प्रेम दरियाय।
तहाँ हरि श्रवण करें सत्य लोक से आय॥

सब कुछ दिया आपने, भेंट करूँ क्या नाथ।
नमस्कार की भेंट करूँ जोडूँ मैं दोनों हाथ॥
नमस्कार की भेंट करूँ जोडूँ मैं दोनों हाथ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

परमात्मा पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है, पूर्ण से ही पूर्ण बन सकता है। पूर्ण में से पूर्ण ले लेने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

सद्गुरुनाथ महाराज की जय।
सद्गुरुनाथ महाराज की जय।
सद्गुरुनाथ महाराज की जय।
सद्गुरुनाथ महाराज की जय॥

श्रीविष्णुसहस्त्रनाम

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे॥ १॥

जिनके स्मरण करने मात्र से जीव जन्म-बन्धन और संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है, उन अनन्त शक्तिसम्पन्न विष्णु भगवान को नमस्कार है।

नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते।
अनेकरूप-रूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे॥ २॥

जो सम्पूर्ण प्राणियों के आदि कारण हैं, पृथ्वी का भरण-पोषण करनेवाले हैं, अनेक रूपों को धारण करनेवाले हैं, ऐसे अनन्त शक्तिसम्पन्न विष्णु भगवान को मेरा नमस्कार है।

वैशम्पायन उवाच
श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः।
युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत॥ ३॥

श्री वैशम्पायन जी बोले

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने अभ्युदय प्राप्ति के लिए पापों का नाश करनेवाले धर्मरहस्यों को सब प्रकार सुन कर और यह समझ कर कि अभी तक ऐसा कोई धर्म नहीं कहा गया जो अल्प प्रयास से ही सिद्ध होनेवाला हो कर भी महान फलवाला हो, शान्तनु के पुत्र भीष्म से फिर पूछा।

युधिष्ठिर उवाच

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम्।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम्॥ ४॥

युधिष्ठिर बोले

समस्त ज्ञान-प्रकाश के लिए भूतलोक में एक ही देव कौन है? तथा एक ही परायण कौन है? अर्थात् इस लोक में एक ही प्राप्तव्य स्थान कौन है? कौन-से देव की स्तुति करने से तथा किस देव की नाना प्रकार से पूजा करने से मनुष्य कल्याण की प्राप्ति कर सकता है?

को धर्मः सर्व-धर्माणां भवतः परमो मतः।
किं जपन् मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्॥ ५॥

आप समस्त धर्मों में किस धर्म को परम श्रेष्ठ मानते हैं? तथा किस का जप करने से जीव जन्म एवं संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है?

भीष्म उवाच

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः॥ ६॥

भीष्म जी ने कहा

इस संसार के स्वामी, देव, काल और वस्तु से परे, कार्य-कारणरूप क्षर और अक्षर से श्रेष्ठ पुरुषोत्तम का सहस्र नामों से निरन्तर स्तवन करने से पुरुष सब दुःखों से पार हो जाता है।

तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम्।
ध्यायन्स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च॥ ७॥

तथा उसी अविनाशी पुरुष का नित्य भजन करने से, पूर्ण भक्ति से बाह्य तथा आन्तरिक पूजन एवं सहस्रनाम द्वारा स्तवन एवं नमस्कार करने से पूजा करनेवाला सब दुःखों से छूट जाता है।

अनादि-निधनं विष्णुं सर्वलोक-महेश्वरम्।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत्॥ ८॥

होना, जन्म लेना, बढ़ना, बदलना, क्षीण होना और नष्ट होना—इन छः भाव विकारों से रहित, विष्णु सम्पूर्ण लोकों के महेश्वर हैं। सारे लोकों को अपने स्वाभाविक ज्ञान से साक्षात् देखने के कारण जो लोकाध्यक्ष हैं, उन देव की निरन्तर स्तुति करने से मनुष्य सब दुःखों के पार हो जाता है।

ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम्।
लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम्॥ ९॥

जो जगत की रचना करनेवाले ब्रह्मा के हितकारी हैं, सब धर्मों को जाननेवाले हैं, सभी प्राणियों की कीर्ति बढ़ानेवाले हैं, जो लोकों के स्वामी, उनको शासित करनेवाले हैं, जो परमार्थ सत्य हैं और जो समस्त भूतों के उद्भव स्थान हैं, उन परमेश्वर का स्तवन करने से मनुष्य सब दुःखों से छूट जाता है।

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा॥ १०॥

मनुष्य सदा अपने हृदय में विराजमान भगवान वासुदेव का भक्तिपूर्वक गुणगान तथा अर्चन करे—इस धर्म को मैं सम्पूर्ण विधिरूप धर्मों में सबसे महान मानता हूँ।

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम्॥ ११॥

जिनके तेज से सब प्रकाशित है, जो सबके नियामक अर्थात् परम तपवाले हैं, जो सत्यादि लक्षणोंवाले परब्रह्म तथा महत्तायुक्त होने के कारण महान हैं और जो पुनरावृत्ति की शंका से रहित, परम आश्रय देनेवाले अर्थात् श्रेष्ठ परायण हैं, वे ही समस्त प्राणियों की परम गति हैं।

पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता॥ १२॥

जो पवित्र करनेवाले तीर्थादिकों में पवित्र हैं, जो मंगलों का मंगल अर्थात् सुखों के साधन और ज्ञापक हैं, जो समस्त देवों के भी देव हैं तथा समस्त भूत-प्राणियों के जो अविनाशी पिता हैं, लोक में वही एकमात्र देव हैं।

यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये॥ १३॥

सत्‌युग आरम्भ होने पर जिनसे सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं, फिर युग समाप्त होने पर, महाप्रलय होने पर उन्हीं में विलीन हो जाते हैं।

तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते।
विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम्॥ १४॥

हे पृथ्वीपति! जो लोकप्रधान, संसार के स्वामी तथा व्यापनशील विष्णु हैं उनके, अशुभकर्म से उत्पन्न पाप और संसाररूप भय को दूर करनेवाले सहस्र नाम मुझसे सुनो।

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये॥ १५॥

जो नाम गुण के कारण प्रवृत्त हुए हैं, उनमें से जो विख्यात हैं और मन्त्र तथा मन्त्र द्रष्टा मुनियों द्वारा भगवत्कथाओं में गाये गये हैं, उन महात्मा, उन देव के उन समस्त नामों का वर्णन करता हूँ।

ऋषिर्नाम्नां सहस्रस्य वेदव्यासो महामुनिः।
छन्दोऽनुष्टुप् तथा देवो भगवान्देवकीसुतः॥ १६॥

सहस्रों नामों के मध्य में जो ऋषि हैं उनका नाम है महामुनि वेदव्यास। इस ग्रन्थ के छन्द का नाम अनुष्टुप है, उपास्य देवता का नाम है– देवकीनन्दन भगवान श्री कृष्ण।

ॐ विष्णुं जिष्णुं महाविष्णुं प्रभविष्णुं महेश्वरम्।
अनेक-रूपं दैत्यान्तं नमामि पुरुषोत्तमम्॥ १७॥

सर्वत्र व्यापक, सर्वत्र जयशील, महान ईश्वर, अनन्त शक्तिशाली, महाविष्णु, अनेक रूप धारण करनेवाले दैत्यों का अन्त कर देनेवाले, पुरुषों में उत्तम भगवान विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ।

श्रीवेदव्यास उवाच
ॐ अस्य श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्रनाम-स्तोत्रमालामन्त्रस्य
श्रीभगवान् वेदव्यास ऋषिः,
श्रीकृष्णः परमात्मा देवता, अनुष्टुप् छन्दः,
आत्मयोनिः स्वयं जात इति बीजम्।
देवकीनन्दनः स्रष्टेति शक्तिः।

त्रिसामा सामगः सामेति हृदयम्।
शङ्खभृन्नन्दकी चक्रीति कीलकम्।
शार्ङ्गधन्वा गदाधर इत्यस्त्रम्।
रथाङ्गपाणिरक्षोभ्य इति कवचम्।
उद्भवः क्षोभणो देव इति परमो मन्त्रः।
श्रीमहाविष्णुप्रीत्यर्थे विष्णोर्दिव्यसहस्रनामजपे विनियोगः॥

श्री वेदव्यास बोले

इन विष्णु भगवान के दिव्य सहस्रनाम स्तोत्रमाला मन्त्र के ऋषि हैं भगवान वेदव्यास, भगवान श्रीकृष्ण इस स्तोत्र के देवता हैं, इस स्तोत्र का छन्द अनुष्टुप है, इसका बीज है आत्मयोनि अर्थात् स्वयं उत्पन्न, इसकी शक्ति हैं जगत की सृष्टि करनेवाले देवकीनन्दन श्रीकृष्ण। इस स्तोत्र का हृदय हैं तीन सामों से परिपूर्ण, सामगान करनेवाले–साम। इसका कीलक हैं–पांचजन्य शंख धारण करनेवाले, नन्दक नाम का खड्ग धारण करनेवाले, सुदर्शन चक्रधारी भगवान। इसका अस्त्र हैं–शार्ङ्गधनुर्धारी और कौमोदिकी गदाधारी। इस स्तोत्र का कवच है–रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः–यह श्लोकांश। इसका परम मन्त्र है–उद्भवः क्षोभणो देवाः–यह श्लोकांश। श्री महाविष्णु की प्रीति के लिए, विष्णु के सहस्रनाम जप के निमित्त यह विनियोग है।

[अथ ध्यानम्]

ॐ शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं।
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्॥

[यह ध्यान है]

जिनका आकार शान्त है, जो सर्प के ऊपर शयन करते हैं, जिनकी नाभि से कमल निकल रहा है, जो देवताओं के अधीश्वर हैं, सारे संसार के आधार हैं, आकाश के समान व्यापक हैं, जिनका रंग मेघ के समान श्यामल है, जिनके अंग-प्रत्यंग अतीव मनोहर हैं, जो धन की अधिष्ठात्री देवी, लक्ष्मी के पति हैं, जिनके नयन कमल के समान हैं, जिनका दर्शन योगियों को ध्यान में होता है, जो सम्पूर्ण लोकों के प्रधान स्वामी हैं, जो संसार के भय का हरण करनेवाले हैं, मैं ऐसे भगवान विष्णु की वन्दना करता हूँ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।
ॐ नमो भगवते सदाशिवाय।
ॐ नमो भगवते नित्यानन्दाय।
ॐ नमो भगवते मुक्तानन्दाय।

भगवान वासुदेव को नमस्कार है। भगवान सदाशिव को नमस्कार है। भगवान नित्यानन्द को नमस्कार है। भगवान मुक्तानन्द को नमस्कार है।

ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः।
भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः॥ १॥

विश्व अर्थात् ओंकार ही ब्रह्म है, जो व्याप्त है वह विष्णु है, जिस वषट्कारादि मन्त्ररूप से देवताओं को प्रसन्न किया जाता है, जो भूत, भविष्य और वर्तमान के प्रभु हैं, ब्रह्मारूप से प्राणियों की रचना करनेवाले हैं अथवा रुद्ररूप से प्राणियों का संहार करते हैं, प्राणियों का भरण-पोषण करनेवाले हैं, उत्पन्न हैं अथवा उनकी सत्ता है, प्राणियों की आत्मा हैं, प्राणियों की वृद्धि करते हैं।

पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च॥ २॥

पवित्र आत्मा अर्थात् स्वरूपवाले हैं, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव होने के कारण श्रेष्ठ आत्मा हैं, गुरु पुरुषों के गन्तव्य देव हैं, अविनाशी हैं, शरीर में शयन करनेवाले हैं, अपने स्वरूपभूत ज्ञान से सब कुछ देखते हैं, क्षेत्र अर्थात् शरीर को जानते हैं, क्षीण न होनेवाले हैं इसलिए अक्षर हैं।

योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः।
नारसिंहवपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः॥ ३॥

मन के साथ समस्त ज्ञानेन्द्रियों को वश में करके प्राप्य के कारण योग हैं, योग को प्राप्त करनेवाले योगविद् ज्ञानियों का, योगक्षेमादि निर्वाह करने के कारण उनके नेता हैं, प्रधान अर्थात् प्रकृति तथा पुरुष, दोनों के स्वामी हैं, जिनके शरीर में नर और सिंह दोनों के अंग दिखायी देते हैं, जिनके हृदय में सर्वदा लक्ष्मी का निवास है, केशी का वध करनेवाले हैं, समस्त पुरुषों में सबसे उत्तम हैं।

सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः।
सम्भवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः॥ ४॥

सर्वदा सबको जाननेवाले हैं, प्रलयकाल में समस्त प्रजा का संहार करते हैं, तीनों गुणों से रहित, शुद्ध हैं, स्थित होने के कारण स्थाणु हैं, भूतों की उत्पत्ति का आदि कारण हैं, समस्त प्राणी इन्हीं में समा जाते हैं और जो अविनाशी हैं, अपनी इच्छा से उत्पन्न होते हैं, सभी भोक्ताओं के फलों को उत्पन्न करते हैं, संसार का भरण करनेवाले हैं, अत्यधिक सामर्थ्यवान हैं, उनका ऐश्वर्य उपाधिरहित होने से वे ईश्वर हैं।

स्वयम्भूः शम्भुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः।
अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ॥ ५ ॥

स्वयं प्रकट होते हैं, भक्तों के लिए सुख की भावना उत्पन्न करते हैं, अखण्डिता पृथ्वी के पति हैं, कमल के समान नेत्रोंवाले हैं, वेदरूप में उनका अति महान स्वर है, जिनके जन्म और विनाश दोनों नहीं हैं, विश्व को धारण करनेवाले हैं, कर्म और कर्मफल की सृष्टि करते हैं, पृथ्वी आदि धारण करनेवाली समस्त धातुओं से श्रेष्ठ हैं।

अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः।
विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ॥ ६ ॥

शब्दातीत होने के कारण भगवान प्रत्यक्षप्रमाण के विषय नहीं हैं तथा प्रमाणादि के भी साक्षी होने के कारण वे अप्रमेय हैं, इन्द्रियाँ उनके अधीन हैं, उनकी नाभि में जगत की उत्पत्ति का कारण रूप पद्म स्थित है, देवताओं के प्रभु हैं, विश्व जिनका कर्म अर्थात् क्रिया है, मनन करने के कारण मनु हैं, संहार के समय समस्त प्राणियों को क्षीण करनेवाले हैं, अतिशय स्थूल हैं, स्थिर रहनेवाले हैं।

अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः।
प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मङ्गलं परम् ॥ ७ ॥

वे कर्मेन्द्रियों से ग्रहण नहीं किये जा सकते, सब काल में रहनेवाले हैं, सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान कृष्णवर्णी हैं, लाल नेत्रवाले हैं, प्रलयकाल में प्राणियों का संहार करते हैं, ज्ञान, ऐश्वर्य आदि गुणों से सम्पन्न हैं, तीनों दिशाओं के धाम हैं, पवित्र करनेवाले हैं, कल्याणरूप होने से परम मंगल हैं।

ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः।
हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः॥ ८॥

समस्त प्राणियों के नियन्ता हैं, प्राणों को देनेवाले हैं, क्षेत्रज या परमात्मा का नाम प्राण है, सबका कारण होने से जेष्ठ हैं तथा सबसे ऊँचे होने से श्रेष्ठ हैं, सब प्रजाओं के पालक हैं, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के आत्मस्वरूप हैं, पृथ्वी को गर्भ में स्थित करनेवाले हैं, लक्ष्मी के पति हैं, मधु नामक दैत्य को मारनेवाले हैं।

ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः।
अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान्॥ ९॥

सर्वशक्तिमान हैं, शूरवीरता से युक्त हैं, धनुर्धारी हैं, बहुत-से ग्रन्थों को धारण करने की सामर्थ्यवाले हैं, संसार को लाँघ जाने के कारण विक्रम हैं, लाँघने, दौड़ने या विस्तार का कारण हैं, उनसे उत्तम कोई और नहीं, दैत्यों आदि से पराजित नहीं हो सकते, प्राणियों के किये हुए पुण्य-पापरूप कर्मों को जानते हैं, पुरुष-प्रयत्न का आधार होने के कारण कृति हैं, अपनी महिमा में स्थित रहनेवाले हैं।

सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः।
अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः॥ १०॥

देवताओं के ईश हैं, दुःख दूर करनेवाले हैं, परमानन्दस्वरूप हैं, विश्व के कारण हैं, सम्पूर्ण प्रजा की उत्पत्ति का कारण हैं, प्रकाशस्वरूप हैं, कालस्वरूप से स्थित हैं, सर्प के समान पकड़ में न आ सकनेवाले हैं, प्रतीति रूप हैं, सर्वरूप होने के कारण सभी उनके नेत्र हैं।

अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः।
वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः॥ ११ ॥

जन्म न लेनेवाले हैं, समस्त ईश्वरों के भी ईश्वर हैं, नित्य-सिद्धस्वरूप हैं, समस्त वस्तुओं में ज्ञानरूप हैं, समस्त प्राणियों का आदि-कारण हैं, अपनी स्वरूप शक्ति से कभी च्युत न होनेवाले हैं, धर्म अर्थात् वृष रूप और कवि अर्थात् वराह रूप हैं, जिनके स्वरूप का माप न किया जा सके, वे अमेयात्मा हैं, सम्पूर्ण सम्बन्धों से रहित हैं।

वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मा सम्मितः समः॥
अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः॥ १२ ॥

समस्त भूतों में निवास करते हैं, प्रशस्त मनवाले हैं, सत्यस्वरूप हैं, उनका आत्मा राग-द्वेषादि से दूषित नहीं है, समस्त पदार्थों से परे हैं, सब समय समस्त विकारों से रहित हैं, पूजा का सम्पूर्ण फल देनेवाले हैं, हृदय में स्थित कमल में लक्षित होते हैं, उनके कर्म धर्मरूप हैं, धर्म के लिए ही देह धारण करते हैं।

रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः।
अमृतः शाश्वतस्थाणुर्वरारोहो महातपाः॥ १३ ॥

प्रलयकाल में प्रजा का संहार करके उसे रुलाते हैं, बहुत-से सिरवाले हैं, लोकों का भरण-पोषण करते हैं, विश्व का कारण हैं, उनका नाम पवित्र एवं सुनने योग्य है, उनका मरण नहीं है, शाश्वत भी हैं और स्थाणु भी हैं, उनमें आरूढ़ होना उत्तम है, उनका सृष्टि-विषयक तप, ज्ञान, अति महान है।

सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः।
वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित् कविः॥ १४॥

सर्वत्र व्याप्त होने के कारण वे सभी जगह जाते हैं, सब कुछ जानते या प्राप्त करते हैं तथा प्रकाशित हैं, उनके रणोद्योगमात्र से दैत्यसेना सब ओर तितर-बितर हो जाती है, दुर्जनों को मारनेवाले हैं, वेदरूप हैं, वेद तथा वेद के अर्थ को यथावत् अनुभव करते हैं, ज्ञानादि से पूर्ण हैं, वेद उनके अंगरूप हैं, वेदों को विचारते हैं, सबको देखनेवाले हैं इसलिए कवि हैं।

लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः।
चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः॥ १५॥

लोकों का निरीक्षण करनेवाले हैं, सुरों के अध्यक्ष हैं, कार्यरूप से कृत और कारणरूप से अकृत हैं, सृष्टि की उत्पत्ति आदि के लिए चार अलग विभूतियोंवाले हैं, अपने चार व्यूह बना कर सृष्टि आदि करते हैं, चार दाढ़ोंवाले हैं तथा चार भुजाओंवाले हैं।

भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः।
अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः॥ १६॥

एकरस प्रकाशस्वरूप हैं, माया हैं, पुरुषरूप से भोगनेवाले हैं, हिरण्याक्षादि को सहन करनेवाले हैं, जगत के आरम्भ में हिरण्यगर्भ रूप से स्वयं उत्पन्न होनेवाले हैं, पापरहित हैं, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि गुणों से विश्व को जीतनेवाले हैं, समस्त भूतों को जीतनेवाले हैं, विश्व उनकी योनी है, क्षेत्रज्ञरूप से पुनः-पुनः शरीरों में बसनेवाले हैं।

उपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः।
अतीन्द्रः संग्रहः सर्गोः धृतात्मा नियमो यमः॥ १७॥

इन्द्र के अनुज हैं, वामनरूप में बलि से याचना करने के कारण वामन हैं, वामन रूप में तीनों लोकों को लाँघने के समय ऊँचे हो जाने के कारण प्रांशु हैं, उनकी चेष्टा व्यर्थ नहीं होती, पवित्र करनेवाले हैं, इन्द्र से भी श्रेष्ठ हैं, सबका संहार करनेवाले हैं, सृष्टि का कारण हैं, अपने स्वरूप को एकरूप से धारण किये हुए हैं, प्रजा को नियमित करते हैं, अन्तःकरण में स्थित हो कर नियमन करने से यम हैं।

वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः।
अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः॥ १८॥

कल्याण की इच्छा द्वारा जानने योग्य हैं, सब विद्याओं के जाननेवाले हैं, सदा प्रत्यक्ष स्वरूप हैं, धर्म की रक्षा के लिए असुर योद्धाओं को मारनेवाले हैं, विद्या के पति हैं, मधु के समान अत्यन्त प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाले हैं, इन्द्रियों के परे हैं, मायावियों पर भी माया फैला देनेवाले हैं, जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के लिए तत्पर रहनेवाले हैं, बलवानों में भी अधिक बलवान हैं।

महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः।
अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक्॥ १९॥

बुद्धिमानों में भी महान बुद्धिमान हैं, संसार की उत्पत्ति के लिए महान वीर्य देनेवाले हैं, अति सामर्थ्यवान हैं, उनकी बाह्य और आभ्यन्तर द्युति महान है, उनका शरीर अनिर्देश्य है, उनमें ऐश्वर्यरूप समग्र लक्ष्मी है, उनका आत्मा अनुमान न किये जा सकने योग्य है, मन्दराचल और गोवर्धन नामक महान पर्वतों को धारण करनेवाले हैं।

महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सताङ्गतिः।
अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविदां पतिः॥ २०॥

जिनका धनुष महान है, प्रलयकालीन जल में डूबी हुई पृथ्वी को धारण करनेवाले हैं, जिनके हृदय में श्री का निवास है, सन्तजनों के पुरुषार्थ-साधन के कारण हैं, किसी से निरुद्ध नहीं हैं, देवताओं को आनन्दित करनेवाले हैं, वाणी को प्राप्त करानेवाले हैं, वाणी को जाननेवाले हैं, उसके स्वामी हैं इसलिए गोविन्दा पति हैं।

मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः।
हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापति॥ २१॥

तेजस्वियों का भी परम तेज हैं, अपनी प्रजा को यम द्वारा दमन करनेवाले हैं, 'मैं वह हूँ' इस प्रकार की भावना करनेवाले का संसार-भय नष्ट कर देते हैं, धर्म और अधर्मरूप सुन्दर पंखों से युक्त हैं, उत्तम भुजाओंवाले हैं, सुवर्ण के समान उनकी कल्याणमयी नाभि है, सुन्दर तप करनेवाले हैं, सबके हृदय-कमल के मध्य में प्रकाशित होनेवाले हैं, प्रजाओं के पति अर्थात् पालक हैं।

अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः सन्धाता सन्धिमान् स्थिरः।
अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा॥ २२॥

उनमें मृत्यु का कारण न होने से अमृत्यु हैं, प्राणियों के सब कर्म-अकर्मादि देखनेवाले हैं, हिंसा न करनेवाले हैं, पुरुषों को उनके कर्मों के फलों से संयुक्त करते हैं, फलों के भोगनेवाले भी वे ही हैं, सदा एकरूप हैं, भक्तों के हृदय में जा कर असुरादि दुष्टों को फेंकते हैं, दानवादिकों से सहन नहीं होते, सबका अनुशासन करते हैं, आत्मा का विशेष रूप से श्रवण करनेवाले हैं, सुरों के शत्रुओं को मारनेवाले हैं।

गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः।
निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः॥ २३॥

सब विद्याओं के उपदेष्टा तथा सबके जन्मदाता हैं, ब्रह्मा आदि को भी ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवाले हैं, परम ज्योति हैं, धर्मस्वरूप हैं, उनका पराक्रम अमोघ है, भगवान के नेत्र मुँदे हुए हैं, आत्मरूप हैं, सर्वदा भूततन्मात्ररूप वैजयन्तीमाला धारण करते हैं, विद्या के पति हैं, सर्व पदार्थों को प्रत्यक्ष करनेवाले हैं।

अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान् न्यायो नेता समीरणः।
सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्॥ २४॥

मुमुक्षुओं को उत्तम पद पर ले जानेवाले हैं, श्रेष्ठ कान्तिवाले हैं, न्याय करनेवाले हैं, जगतरूप यन्त्र को चलानेवाले हैं, श्वासरूप से प्राणियों से चेष्टा कराते हैं, सहस्र सिरवाले हैं, विश्व के आत्मा हैं, सहस्र आँखोंवाले या सहस्र इन्द्रियोंवाले हैं, सहस्र पादवाले हैं।

आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः सम्प्रमर्दनः।
अहःसंवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः॥ २५॥

संसार चक्र का आवर्तन करनेवाले हैं, संसार-बन्धन से निवृत्त रहनेवाले हैं, अविद्या रूपी परदे से ढके हुए हैं, सब ओर से मर्दन करनेवाले हैं, दिन के प्रवर्तक हैं, हवि का वहन करनेवाले हैं, ग्रहण न करने के कारण अनिल हैं, पृथ्वी को धारण करते हैं।

सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग्विश्वभुग्विभुः।
सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः॥ २६॥

जिनका कृपा-प्रसाद अति सुन्दर है, रज और तम से रहित हैं, विश्व को धारण करनेवाले हैं, विश्व का पालन करनेवाले हैं, विविध रूपवाले हैं, सत्कार करते हैं, पूजितों से भी पूजित हैं, न्यायानुकूल प्रवृत्त होते हैं, अज्ञानियों को त्यागते और भक्तों को परम पद पर ले जाते हैं, जगत में जो कुछ भासता है उन सब में बाहर-भीतर व्याप्त होनेवाले हैं, नयन अर्थात् ले जानेवाले हैं इसलिए नर हैं।

असङ्ख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः।
सिद्धार्थः सिद्धसङ्कल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः॥ २७॥

नाम-रूप भेदादि से रहित हैं, अप्रमेय आत्मा वाले हैं, सबसे श्रेष्ठ हैं, शासन करनेवाले हैं, मलहीन हैं, भगवान का इच्छित अर्थ सिद्ध हो गया है इसलिए सिद्धार्थ हैं, उनका संकल्प पूर्ण हो गया है, कर्ताओं को उनके कर्मानुसार फल देते हैं, सिद्धिरूप क्रिया के साधक हैं।

वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः।
वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः॥ २८॥

द्वादशाहादि यज्ञ भगवान में स्थित होने से वृषाही हैं, इच्छित वस्तुओं को देनेवाले हैं, सब ओर व्याप्त हैं, धर्म की सीढ़ियाँ हैं, भगवान का उदर विशाल है, वे सब कुछ बढ़ानेवाले हैं, प्रपंचरूप से बढ़ाते हैं, इस प्रकार बढ़ते हुए भी अलग ही रहते हैं, उनमें समस्त श्रुतियाँ स्थित हैं, अतः वे श्रुतिसागर हैं।

सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः।
नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः॥ २९॥

अति सुन्दर भुजाओंवाले हैं, लोकधारक पदार्थों को धारण करनेवाले हैं परन्तु स्वयं किसी से धारण नहीं किये जा सकते, वेदमयी वाणी

का प्रादुर्भाव करनेवाले हैं, ईश्वरों के भी ईश्वर हैं, धन देनेवाले हैं, दिया जानेवाला धन भी वे ही हैं, अनेक रूपोंवाले हैं, भगवान के रूप बहुत हैं, यज्ञमूर्ति शिपिविष्ट हैं, सबको प्रकाशित करनेवाले हैं।

ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः।
ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः॥ ३० ॥

प्राण, तेज तथा दीप्ति को धारण करनेवाले हैं, प्रकाश स्वरूप आत्मावाले हैं, विश्वों को तप्त करते हैं, धर्म, ज्ञान और वैराग्यादि से सम्पन्न हैं, भगवान का ओंकार रूप अक्षर स्पष्ट है, भगवान साक्षात् मन्त्र हैं, चन्द्रमा की किरणों के समान आह्लादित करनेवाले हैं, सूर्य के तेज के समान धर्मवाले हैं।

अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिन्दुः सुरेश्वरः।
औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः॥ ३१ ॥

चन्द्रमा की उत्पत्ति के कारणरूप होने से भासित होनेवाले हैं, चन्द्रमा के समान सम्पूर्ण प्रजा का पोषण करते हैं, सुरों के ईश्वर हैं, संसार रोग का औषध हैं, संसार को पार करने के सेतु हैं, उनके धर्म-ज्ञानादि गुण और पराक्रम सत्य हैं।

भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः।
कामहा कामकृत्कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः॥ ३२ ॥

भूत, भविष्य और वर्तमान प्राणियों के नाथ हैं, पवित्र करनेवाले हैं, चलानेवाले हैं, गन्धहीन हैं, मोक्षकामी भक्तजनों की कामनाओं को नष्ट करनेवाले हैं, सात्विक भक्तों की कामनाओं को पूरा करते हैं, अत्यन्त रूपवान हैं, पुरुषार्थ की आकांक्षावालों द्वारा कामना किये जाते हैं, भक्तों को उनकी इच्छित वस्तुएँ देते हैं, श्रेष्ठ हैं।

युगादिकृद्युगावर्तो नैकमायो महाशनः।
अदृश्यो व्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित्॥ ३३॥

युगादि कालभेद के कर्ता हैं, युगों का आवर्तन करते हैं, अनेक मायाओं को धारण करनेवाले हैं, कल्पना में सबको ग्रस लेनेवाले हैं, ज्ञानेन्द्रियों के परे हैं, स्थूलरूप से भगवान का स्वरूप व्यक्त है, सहस्रों देवशत्रुओं को जीतनेवाले हैं, सर्वत्र समस्त भूतों को जीतते हैं।

इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो वृषः।
क्रोधहा क्रोधकृत् कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः॥ ३४॥

यज्ञ द्वारा पूजे जाते हैं, सबके अन्तर्यामी हैं, शिव अर्थात् विद्वानों के इष्ट हैं, मोरपंख उनका शिरोभूषण है, भूतों को माया से बाँधनेवाले हैं, वृष अर्थात् धर्म हैं, साधुओं का क्रोध नष्ट करनेवाले हैं, असाधुओं पर क्रोध करते हैं, जगत कर्म है और भगवान उसके कर्ता हैं, सबके आश्रय स्थान हैं, पृथ्वी को धारण करते हैं।

अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः।
अपां निधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः॥ ३५॥

भाव-विकारों से रहित हैं, प्रसिद्ध हैं, प्रजा को जीवन देते हैं, देवताओं को बल देते हैं, इन्द्र के अनुज के रूप में उत्पन्न होने से वासवानुज हैं, समुद्र उनकी विभूति है, सब भूत बह्म में स्थित हैं इसलिए वे अधिष्ठान हैं, कर्मानुसार फल देते हुए कभी चूक नहीं करते, अपनी महिमा में स्थित हैं।

स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः।
वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरन्दरः॥ ३६॥

स्कन्दन करनेवाले हैं, धर्मयोग को धारण करनेवाले हैं, समस्त भूतों के बोझ को धारण करनेवाले हैं, इच्छित वर देनेवाले हैं, सातों वायु को चलानेवाले हैं, सबको आच्छादित करनेवाले हैं तथा स्तुत्य हैं, अपनी किरणों से सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करनेवाले हैं, सबके कारण हैं और देव भी हैं, देवशत्रुओं के नगरों का ध्वंस करनेवाले हैं।

अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः॥ ३७॥

शोकादि से रहित हैं, संसार-सागर से तारते हैं, गर्भ-जन्म-जरा-मृत्युरूप भय से तारते हैं, पुरुषार्थ करनेवाले हैं, शूर की सन्तान हैं, जीवों के ईश्वर हैं, सबके आत्मारूप हैं, सैकड़ों अवतार लिए हुए हैं, हाथों में पद्म लिए हैं, कमल-नेत्रोंवाले हैं।

पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत्।
महर्धिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः॥ ३८॥

हृदय रूप कमल की नाभि में स्थित हैं, कमल के समान नेत्रवाले हैं, हृदयरूप पद्म के मध्य में उपासना किये जानेवाले हैं, देहधारियों के शरीर का पोषण करनेवाले हैं, महान ऋद्धिवाले हैं, प्रपंचरूप होने से ऋद्ध हैं, उनका आत्मा पुरातन है, अनेकों महान आँखोंवाले हैं, उनकी ध्वजा गरुड़ के चिह्नवाली है।

अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः।
सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान् समितिञ्जयः॥ ३९॥

भगवान की कोई तुलना नहीं है, शरीर में प्रत्यागात्मारूप से भासते हैं, उनसे सब भय मानते हैं, छः समयों अर्थात् ऋतुओं को जाननेवाले

हैं, यज्ञों में हवि का भाग हरण करते हैं, सर्व प्रमाणों से होनेवाले ज्ञान में परम उत्तम हैं, उनके हृदय में लक्ष्मी जी का वास है, युद्ध को जीतनेवाले हैं।

विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः।
महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः॥ ४० ॥

वे नाशवान नहीं हैं, रोहित नामक एक मत्स्यविशेष का स्वरूप धारण करनेवाले हैं, परमानन्द प्राप्त करनेवाले हैं, संसार के कारण वे ही हैं, उत्कृष्ट मति से जाने जाते हैं, सबको सहन करनेवाले हैं, पृथ्वी को धारण करते हैं, स्वेच्छा से देह धारण कर परम ऐश्वर्य भोगते हैं, तीव्र गतिवाले हैं, संहार के समय सारे विश्व को खा जाते हैं।

उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः।
करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः॥ ४१ ॥

संसार की उत्पत्ति के कारण हैं, उत्पत्ति के समय प्रकृति और पुरुष में प्रविष्ट हो कर उन्हें क्षुब्ध किया था, अन्तर-आत्मारूप से प्रकाशित हैं, स्तवन किये जाते हैं और सर्वत्र जाते हैं, उनके उदर-गर्भ में संसाररूप श्री स्थित हैं, परम हैं और ईशनशील हैं, संसार की उत्पत्ति के सबसे बड़े साधन हैं, जगत के उपादान और निमित्त कारण हैं, स्वतन्त्र हैं, विचित्र भुवनों की रचना करते हैं, उनका स्वरूप, सामर्थ्य अथवा कृत्य जाना नहीं जाता, अपनी माया से स्वरूप को ढक लेते हैं।

व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः।
परर्द्धिः परमस्पष्ट स्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः॥ ४२ ॥

ज्ञानमात्रस्वरूपवाले हैं, उनमें सबकी व्यवस्था है, प्रलय के पश्चात् समस्त प्राणी उन्हीं में स्थित होते हैं, कर्मों के अनुसार स्थान देते हैं, अविनाशी हैं, भगवान की ऋद्धि श्रेष्ठ है तथा ज्ञानरूप होने से स्पष्ट है, एकमात्र परमानन्द स्वरूप हैं, सर्वत्र परिपूर्ण हैं, उनका दर्शन सर्वथा शुभ है।

रामो विरामो विरतो मार्गो नेयो नयोऽनयः।
वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः॥ ४३ ॥

भगवान में योगीजन रमण करते हैं, उनमें प्राणियों का अन्त होता है, विषय सेवन में जिनका राग नहीं है, जिन्हें जान कर मुमुक्षुजन अमर हो जाते हैं, सम्यक् ज्ञान से जीव को परमात्माभाव को ले जाया जाता है इसलिए जीव नेय है, जो ले जाता है वह नय है, भगवान का कोई और नेता नहीं है, विक्रमशाली हैं, शक्तिमानों में भी शक्तिमान हैं, समस्त भूतों को धारण करनेवाले हैं, समस्त धर्मवेत्ताओं में उत्तम हैं।

वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः।
हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः॥ ४४ ॥

विविध कुण्ठाओं को दूर करनेवाले हैं, सबसे पहले होने के कारण पुरुष हैं, प्राणवायुरूप से चेष्टा करते हैं, प्रलयकाल में प्राणियों के प्राणों का खण्डन करते हैं, ॐ कह कर प्रणाम किये जाते हैं, अपने वीर्य से ब्रह्मा की उत्पत्ति का कारण हैं, देवताओं के शत्रुओं को मारते हैं, कारण रूप से सब कार्यों को व्याप्त करते हैं, गन्ध करनेवाले हैं, आकाश और पृथ्वी के मध्य में विराट रूप से प्रकट होते हैं।

ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः।
उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः॥ ४५॥

ऋतुशब्द द्वारा कालरूप से लक्षित होते हैं, उनका दर्शन अति सुन्दर-निर्वाणरूप फल देनेवाला है, सबकी गणना करनेवाले हैं, हृदयाकाश के भीतर परम महिमा में स्थित रहनेवाले हैं, सब ओर से ग्रहण किये जाते हैं, भय के कारण हैं, सब भूत इनमें बसते हैं, सब कार्य बड़ी शीघ्रता से करते हैं, मुमुक्षुओं को मोक्ष देते हैं, समस्त कार्यों में दक्ष हैं।

विस्तारः स्थावरस्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम्।
अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः॥ ४६॥

भगवान में समस्त लोक विस्तार पाते हैं, स्थितिशील हैं तथा स्थितिशील पदार्थ उनमें स्थित हैं, संवित्स्वरूप हैं, संसार के कारण हैं, प्रार्थनीय हैं, पूर्ण काम होने के कारण उनका कोई प्रयोजन नहीं, महान कोश भगवान को ढकनेवाले हैं, सुस्वरूप महान भोग हैं, भोग साधनरूप महान धनवाले हैं।

अनिर्विण्णः स्थविष्ठोऽभूर्धर्मयूपो महामखः॥
नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः॥ ४७॥

उदासीनता से परे हैं, स्थित रहनेवाले हैं, अजन्मा होने से अभू हैं, आराधनारूप धर्म भगवान में बाँधे जाते हैं, उनको अर्पित किये हुए यज्ञ महान हो जाते हैं, सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल में केन्द्र के समान प्रवर्तकरूप से वर्तमान हैं, चन्द्ररूप होने से भगवान नक्षत्री हैं, समस्त कार्यों में समर्थ हैं, आत्मभाव से स्थित रहनेवाले हैं, सृष्टि आदि के लिए सम्यक् चेष्टा करते हैं।

यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सताङ्गतिः।
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम्॥ ४८॥

सर्वयज्ञरूप हैं, पूजनीय हैं, मोक्षरूप फल देनेवाले हैं, चूषसहित यज्ञरूप हैं, विधिरूप धर्म को प्राप्त करनेवाले हैं, मुमुक्षुओं की गति हैं, समस्त प्राणियों के सम्पूर्ण कर्माकर्म को देखते हैं, विमुक्त भी हैं और आत्मा भी हैं, सर्व हैं और ज्ञाता हैं, सम्पूर्ण ज्ञान रखनेवाले हैं।

सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत्।
मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः॥ ४९॥

भगवान का शुभ व्रत हैं, सुन्दर मुखवाले हैं, शब्दादि स्थूल कारणों से परे हैं, वेदरूप सुन्दर घोषवाले हैं, सदाचारियों को सुख देनेवाले हैं, बिना प्रत्युपकार की इच्छा के ही उपकार करनेवाले हैं, अत्यन्त आनन्दस्वरूप होने के कारण मन का हरण करते हैं, जिन्होंने क्रोध को जीत लिया है, विक्रमशालिनी भुजाओंवाले हैं, अधार्मिकों को विदीर्ण करनेवाले हैं।

स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत्।
वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः॥ ५०॥

जीवों को माया द्वारा आत्मज्ञानरूप जागृति से रहित करने के कारण स्वापन हैं, स्वतन्त्र हैं, आकाश के समान सर्वव्यापी हैं, नाना प्रकार से स्थित हैं, अनेक कर्म करते हैं, सब कुछ उन्हीं में बसा हुआ है, भक्तों के स्नेही हैं, वत्सों का पालन करनेवाले हैं, रत्न उनके गर्भरूप हैं, धनों के स्वामी हैं।

धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम्।
अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः॥ ५१॥

धर्म की रक्षा करते हैं, धर्म की मर्यादा स्थापित करने के लिए धर्म ही करते हैं, धर्मों को धारण करनेवाले हैं, सत्यस्वरूप हैं, प्रपंचरूप होने से असत् हैं, सब भूत क्षर हैं और कूटस्थ अक्षर है, वासना से परे हैं, सूर्य की किरणें उनका ही स्वरूप हैं, समस्त भूतों को धारण करनेवाले हैं, चैतन्यस्वरूप हैं।

गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः।
आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः ॥ ५२ ॥

किरणों के चक्र के बीच में सूर्यरूप से स्थित हैं, समस्त प्राणियों में स्थित हैं, सिंह के समान पराक्रमी हैं, भूतों के महान ईश्वर हैं, महान ज्ञानयोग और ऐश्वर्य से महिमान्वित हैं, देवों के ईश हैं, इन्द्र के शासक हैं।

उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः।
शरीरभूतभृद्भोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः ॥ ५३ ॥

जन्मरूप संसारबन्धन से मुक्त होते हैं, गौओं का पालन करनेवाले हैं, जगत के रक्षक हैं, केवल ज्ञान से ही जाने जाते हैं, काल से अपरिच्छिन्न हैं, भूतों का प्राणरूप से पालन करते हैं, पालन करनेवाले हैं, कपियों के स्वामी हैं, यज्ञानुष्ठान करते समय भगवान की बहुत-सी दक्षिणाएँ रहती हैं, इसलिए वे भूरिदक्षिण हैं।

सोमपोऽमृतपः सोमः पुरुजित् पुरुसत्तमः।
विनयो जयः सत्यसन्धो दाशार्हः सात्वतां पतिः ॥ ५४ ॥

देवतारूप से सोमपान करते हैं, आत्मारूप अमृतरस का पान करनेवाले हैं, ओषधियों का पोषण करनेवाले हैं, बहुतों को

जीतनेवाले हैं, विश्वरूप और उत्कृष्ट हैं, दुष्टों को दण्ड देनेवाले हैं, सब भूतों को जीतते हैं, सत्य संकल्पवाले हैं, दान के योग्य हैं, योगक्षेम करनेवाले हैं।

जीवो विनयिता साक्षी मुकुन्दोऽमितविक्रमः।
अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तकः॥ ५५॥

क्षेत्रज्ञ रूप से प्राण धारण करनेवाले हैं, प्रजा के विजय भाव को साक्षात् देखते हैं, मुक्ति देनेवाले हैं, उनकी शूरवीरता अतुलित है, देवता आदि भगवान में रहते हैं इसलिए वे अम्भोनिधि हैं, देश, काल, और वस्तु से परे हैं, सम्पूर्ण जगत को जलमय करके महोदधि में शयन करते हैं, भूतों का अन्त करते हैं।

अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः।
आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः॥ ५६॥

विष्णु से उत्पन्न हुआ है इसलिए काम अज है, पूजा के योग्य हैं, नित्य-सिद्ध हैं, आन्तरिक एवं बाह्य शत्रुओं को जीत लेनेवाले हैं, ध्यानमात्र से ध्यानियों को प्रमुदित करते हैं, आनन्दस्वरूप हैं, आनन्दित करनेवाले हैं, सब प्रकार की सिद्धियों से सम्पन्न हैं, भगवान के ज्ञान आदि धर्म सत्य हैं, जिनके तीन डग तीनों लोकों में व्याप्त हो गये वे त्रिविक्रम हैं।

महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः।
त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत्॥ ५७॥

महान ऋषि हैं, सम्पूर्ण वेदों को जाननेवाले हैं और सांख्यरूप शुद्ध तत्त्व-विज्ञान के आचार्य भी हैं, कार्यरूप जगत और आत्मा हैं, पृथ्वी के पति हैं, भगवान के तीन पद हैं, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति,

तीनों अवस्थाओं के साक्षी हैं, मत्स्यरूप हो कर महाश्रृङ्ग में क्रीड़ा करनेवाले हैं, संहार करनेवाले हैं।

महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकाङ्गदी।
गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः॥ ५८॥

महान और वराह हैं, भगवान को वाणी से प्राप्त करते हैं, पार्षदरूप सुन्दर सेना रखते हैं, सोने के भुजबन्ध धारण करनेवाले हैं, गोपनीय उपनिषद्-विद्या से जाने जाते हैं, ज्ञान, ऐश्वर्य, बल और पराक्रम से सुसज्जित हैं, कठिनता से प्रवेश किये जाने योग्य हैं, वाणी और मन के अविषय हैं, चक्र और गदा को धारण करनेवाले हैं।

वेधाः स्वाङ्गोऽजितः कृष्णो दृढः सङ्कर्षणोऽच्युतः।
वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः॥ ५९॥

विधान करनेवाले हैं, कार्य के करने में सहकारी हैं, अपने अवतारों में किसी से नहीं जीते गये, कृष्णद्वैपायन हैं, उनके स्वरूप-सामर्थ्यादि का कभी ह्रास नहीं होता, संहार के समय एक साथ ही प्रजा का आकर्षण करते हैं तथा अपने पद से च्युत नहीं होते, सायंकालीन सूर्य वरुण हैं, वरुण के पुत्र वारुण हैं, वृक्ष के समान अचल भाव से स्थित हैं, हृदय-कमल में चिन्तन किये जाने पर चित्स्वरूप से प्रकाशित होते हैं, सृष्टि, स्थिति और अन्त—ये तीनों कर्म मन से ही करते हैं।

भगवान् भगहानन्दी वनमाली हलायुधः।
आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः॥ ६०॥

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य जिनमें हैं वही भगवान हैं, संहार के समय ऐश्वर्य का हनन करते हैं, सुस्वरूप हैं, वैजयन्ती

नाम की वनमाला धारण करनेवाले हैं, हल ही उनका शस्त्र है, वामनरूप से अदिति के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले हैं, सूर्यमण्डलान्तर्गत ज्योति में स्थित हैं, शीतोष्णादि द्वन्द्वों को सहन करते हैं, गति हैं और सर्वश्रेष्ठ हैं।

सुधन्वा खण्ड-परशुर्दारुणो द्रविणप्रदः।
दिवस्पृक् सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः॥ ६१ ॥

सुन्दर शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले हैं, शत्रुओं का खण्डन करने में उनका परशु खण्ड कहलाता है, सन्मार्ग विरोधियों के लिए दारुण हैं, भक्तों को इच्छित धन देते हैं, स्वर्ग का स्पर्श करनेवाले हैं, सम्पूर्ण ज्ञानों का विस्तार करनेवाले व्यास हैं, विद्या के पति हैं और जननी से जन्म नहीं लेते।

त्रिसामा सामगः-साम-निर्वाणं भेषजं भिषक्।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम्॥ ६२ ॥

तीनों सामों द्वारा सामगान करनेवालों से स्तुति किये जाते हैं, सामगान करते हैं, परमानन्दस्वरूप ब्रह्म ही निर्वाण है, संसाररूप रोग की औषध हैं, पराविद्या का उपदेश देनेवाले हैं, मोक्ष के लिए संन्यास आश्रम की रचना करनेवाले हैं, संन्यासियों को ज्ञान के साधन का विशेषरूप से उपदेश देनेवाले हैं, विषयसुखों में अनासक्त हैं, प्रलयकाल में प्राणी सर्वथा भगवान में ही स्थित रहते हैं, सम्पूर्ण अविद्या की निवृत्ति करनेवाले हैं, पुनरावृत्ति की शंका से रहित परम उत्कृष्ट स्थान हैं।

शुभाङ्गः शान्तिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः।
गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः॥ ६३ ॥

सुन्दर शरीर धारण करनेवाले हैं, शान्ति देनेवाले हैं, सर्ग के आरम्भ में सब भूतों को रचानेवाले हैं, पृथ्वी में मुदित होते हैं, पृथ्वी को घेरे हुए जल में शयन करते हैं, गौओं के हितकारी हैं, भूमि के पति हैं, जगत के रक्षक हैं, धर्म की दृष्टि रखनेवाले हैं, भगवान को धर्म प्रिय है।

अनिवर्ती निवृत्तात्मा सङ्क्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः।
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतां वरः॥ ६४॥

धर्म से विमुख नहीं होते, आत्मा स्वभाव से ही विषयों से निवृत्त है, संहार के समय विस्तृत जगत को सूक्ष्मरूप से संक्षिप्त करते हैं, रक्षा करते हैं, नामस्मरण मात्र से पवित्र करनेवाले हैं, भगवान के वक्षस्थल में श्रीवत्स नामक चिह्न है, हृदय में श्री का निवास है, श्री के पति हैं, ब्रह्मादि आदि श्रीमानों में प्रधान हैं।

श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः।
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः॥ ६५॥

भक्तों को श्री देते हैं, श्री के ईश हैं, उनमें सम्पूर्ण श्रियाँ एकत्रित हैं, समस्त भूतों को उनके कर्मानुसार विविध प्रकार की श्रियाँ देते हैं, श्री को धारण करनेवाले हैं, भक्तों को श्रीयुक्त करते हैं, कभी नष्ट न होनेवाले सुख का प्राप्त होना ही श्रेय है और वह परमात्मा का ही स्वरूप है, भगवान में श्रियाँ हैं, तीनों लोकों के आश्रय हैं।

स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो नन्दिर्ज्योतिर्गणेश्वरः।
विजितात्मा विधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः॥ ६६॥

कमल के समान सुन्दर नेत्रवाले हैं, परमानन्दस्वरूप भगवान उपाधिभेद से सैकड़ों प्रकार के हो जाते हैं, परमानन्दस्वरूप हैं, नक्षत्रगणों के ईश्वर

हैं, उन्होंने आत्मा अर्थात् मन को जीत लिया है, भगवान का स्वरूप किसी के द्वारा विधिरूप से नहीं कहा जा सकता, भगवान की कीर्ति सत्य है, भगवान को कोई संशय नहीं है।

उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतः स्थिरः।
भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः॥ ६७॥

सब प्राणियों से उत्कृष्ट हैं, अपने चैतन्यस्वरूप से सब ओर से सबको देखते हैं, भगवान का कोई ईश नहीं है, भूमि पर सोये थे इसलिए भूशय हैं, बहुत-से अवतार ले कर पृथ्वी को भूषित करनेवाले हैं, सत्ता या विभूतिरूप हैं, भगवान का शोक विगत हो गया है, अपने स्मरणमात्र से भक्तों का शोक नष्ट कर देते हैं।

अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा विशोधनः।
अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः॥ ६८॥

अपनी किरणों से सूर्य, चन्द्र आदि को अर्चिष्मान् कर रहे हैं, सम्पूर्ण लोकों से पूजित हैं, कुम्भ के समान भगवान में सब वस्तुएँ स्थित हैं, विशुद्ध आत्मा हैं, अपने स्मरणमात्र से पापों का नाश कर देनेवाले हैं, अपने शत्रुओं द्वारा कभी रोके नहीं जाते, भगवान का कोई विरुद्ध पक्ष नहीं है, भगवान का द्युम्न-धन श्रेष्ठ है, उनका पुरुषार्थ अपरिमित है।

कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः।
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः॥ ६९॥

कालनेमि नामक असुर का हनन करनेवाले हैं, शूर हैं, शूरकुल में उत्पन्न होनेवाले हैं, इन्द्रादि शूरवीरों का भी शासन करनेवाले हैं, अन्तर्यामी

से तीनों लोकों के आत्मा हैं, भगवान की आज्ञा से तीनों लोक अपने-अपने कार्यों में लगे रहते हैं, सूर्यादि के अन्दर व्याप्त हुई किरणों से युक्त हैं, केशी नामके असुर को मारनेवाले हैं, संसार को हर लेते हैं।

कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः।
अनिर्देश्य-वपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनञ्जयः॥ ७०॥

कामना किये जाते हैं और देव भी हैं, कामनाओं का पालन करते हैं, स्वभावतः पूर्ण काम होने से कामी हैं, परम सुन्दर देह धारण करनेवाले हैं, शास्त्र रचनेवाले हैं, गुणादि से अतीत हैं, भगवान की प्रचुर कान्ति पृथ्वी और आकाश को व्याप्त करके स्थित है, गति आदि से युक्त होने के कारण वीर हैं, व्यापी, नित्य, सर्वात्मा तथा देश, काल और वस्तु से परे हैं, अर्जुन रूप में दिग्विजय के समय बहुत-सा धन जीतने के कारण धनंजय हैं।

ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद् ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः।
ब्रह्मविद्ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः॥ ७१॥

तप, वेद, ब्राह्मण और ज्ञान के हितकारी हैं, तप आदि के करनेवाले हैं, ब्रह्मारूप से सबकी रचना करते हैं, सत्यादि लक्षण विशिष्ट हैं, तपादि को बढ़ानेवाले हैं, वेद तथा वेद के अर्थ को यथावत् जानते हैं, भगवान में ही तप, वेद, मन, प्राण, आदि हैं, अपने आत्मभूत वेदों को जानते हैं, ब्राह्मणों के प्रिय हैं।

महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः।
महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः॥ ७२॥

भगवान का डग महान है, जगत की उत्पत्ति आदि उनके महान कर्म हैं, उनके तेज से सूर्य आदि तेजस्वी हो रहे हैं, वे महान अस्त्र हैं, महान यज्ञ हैं, महान हैं और लोकसंग्रह के लिए यज्ञानुष्ठान करनेवाले हैं, महान हैं और यज्ञ हैं, महान हैं और हवि हैं।

स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः।
पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः॥ ७३॥

सबसे स्तुति किये जाते हैं, इसी कारण से सत्वप्रिय भी हैं, जिससे स्तुति की जाती है वह स्तोत्र हैं, स्तवन क्रिया का नाम स्तुति है, स्तुति करनेवाले भी भगवान स्वयं ही हैं, उन्हें रण प्रिय है, समस्त कामनाओं से और सम्पूर्ण शक्तियों से सम्पन्न हैं, पूर्ण करनेवाले भी हैं, स्मरण मात्र से पापों का क्षय कर देते हैं, भगवान की कीर्ति पुण्यमयी है, बाह्य अथवा आन्तरिक व्याधियों से पीड़ित नहीं होते।

मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः।
वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः॥ ७४॥

भगवान का मन वेगवान है, समस्त तीर्थों अथवा विद्याओं के कर्ता तथा वक्ता हैं, सुवर्ण भगवान का वीर्य है, भगवान खुले हाथ से धन देते हैं, भक्तों को मोक्षरूप उत्कृष्ट फल देते हैं, वसुदेवजी के पुत्र हैं, भगवान में सब भूत बसते हैं, समस्त पदार्थों में समस्त रूप से बसनेवाले हैं, ब्रह्म ही हवि हैं।

सद्‍गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः।
शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः॥ ७५॥

उनकी बुद्धि श्रेष्ठ है, जगत की उत्पत्ति आदि भगवान की कृति श्रेष्ठ है, सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद से रहित अनुभूति का नाम सत्ता है, अबाधित तथा बहुत प्रकार से भासित हैं, परम श्रेष्ठ स्थान हैं, हनुमान आदि शूरवीर सैनिकों से युक्त उनकी शूरसेना है, यदुवंशियों के प्रधान हैं, विद्वानों के आश्रय हैं, सुन्दर आसनवाले हैं।

भूतावासो वासुदेवः सर्वासु निलयोऽनलः।
दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः॥ ७६॥

उनमें सर्वभूत मुख्य रूप से निवास करते हैं, जगत को माया से आच्छादित करते हैं, सम्पूर्ण प्राण उन जीवरूप आश्रय में लीन हो जाते हैं, भगवान की शक्ति और सम्पत्ति की समाप्ति नहीं है, धर्मविरुद्ध मार्ग में रहनेवालों का दर्प नष्ट करते हैं, धर्ममार्ग में रहनेवालों को गौरव देते हैं, नित्य प्रमुदित रहते हैं, उन्हें अपने हृदय में बड़ी कठिनता से धारण करते हैं, आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं से पराजित नहीं होते।

विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान्।
अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः॥ ७७॥

विश्व भगवान की मूर्ति है, भगवान की मूर्ति बड़ी है, भगवान की ज्ञानमयी मूर्ति दीप्त है, उनकी कोई कर्मजन्य मूर्ति नहीं है, अनेकों अवतार लेनेवाले हैं, अनेक मूर्तिवाले हैं तो भी व्यक्त नहीं होते, भगवान की विकल्पजन्य अनेक मूर्तियाँ हैं, सैकड़ों मुखवाले हैं।

एको नैकः सवः कः किं यत् तत्पदमनुत्तमम्।
लोकबन्धुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः॥ ७८॥

भेदों से शून्य होने के कारण परमात्मा एक हैं, माया से अनेक रूपवाले हैं, सोम निकालनेवाले यज्ञ हैं, सुखरूप से स्तुति किये जानेवाले हैं, ब्रह्म ही विचार करने योग्य है, विस्तार करनेवाले हैं, मुमुक्षुओं द्वारा प्राप्त किये जानेवाले पद हैं और उनसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है, लोकों के बन्धु हैं, लोकों का नियमन, शासन करते हैं, मधुवंश में उत्पन्न होनेवाले हैं, भक्तों के प्रति स्नेहयुक्त हैं।

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी।
वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः॥ ७९॥

सुवर्ण के समान वर्णवाले हैं, उनका शरीर सुवर्ण के समान है, उनके अंग सुन्दर हैं, आह्लादित करनेवाले भुजबन्धों से विभूषित हैं, दैत्यों का हनन करते हैं, सबसे विलक्षण हैं, समस्त विशेषों से शून्य हैं, भगवान की आशीष अचूक हैं, वे विचलित नहीं होते, वायुरूप से चलते हैं।

अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक्।
सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः॥ ८०॥

भगवान को आत्माभिमान नहीं है, अपनी माया से सबको अनात्मा में आत्माभिमान देते हैं, सबके पूजनीय हैं, चौदह लोकों के स्वामी हैं, तीनों लोकों को धारण करते हैं, भगवान की प्रजा सुन्दर है, यज्ञ में उत्पन्न होते हैं, कृतार्थ होने से धन्य हैं, भगवान की मेधा सत्य है, समस्त पृथ्वी को धारण करते हैं।

तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः॥ ८१॥

सदा तेज अर्थात् जल की वर्षा करते हैं, देह में कान्ति को धारण करनेवाले हैं, समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ हैं, समर्पित किये हुए पत्र-पुष्पादि ग्रहण करते हैं, अपने अधीन करके सबका निग्रह करते हैं, उनका नाश नहीं हैं, चार सींगवाले हैं, मन्त्र से पहले ही प्रकट होते हैं।

चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः।
चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात्॥ ८२॥

भगवान की चार मूर्तियाँ हैं, चार भुजाओंवाले हैं, चार पुरुष भगवान के व्यूह हैं, चार आश्रम और चार वर्णों की गति हैं, चार अन्तःकरणों से युक्त हैं, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष भगवान से प्रकट होते हैं, चारों वेदों के अर्थ को जाननेवाले हैं, भगवान का एक ही पाद है।

समावर्तो निवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः।
दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा॥ ८३॥

संसार-चक्र को भली प्रकार घुमानेवाले हैं, उनका मन विषयों से निवृत्त है, किसी से जीते नहीं जा सकते, सूर्य आदि भी उनकी आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते, दुर्लभ भक्ति से प्राप्त होनेवाले हैं, कठिनता से जाने जाते हैं, पुरुषों द्वारा कठिनता से प्राप्त किये जाते हैं, योगीजन बड़ी कठिनता से चित्त में भगवान को बसा पाते हैं, दुष्ट मार्ग पर चलनेवालों को मारते हैं।

शुभाङ्गो लोकसारङ्ग सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः।
इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः॥ ८४॥

सुन्दर अंगोंवाले हैं, लोकों के सार को भ्रमर के समान ग्रहण करते हैं, भगवान का तन्तु—यह विस्तृत जगत सुन्दर है, उसी तन्तु को

बढ़ाने या काटनेवाले हैं, इन्द्र के कर्म के समान ही कर्मवाले हैं, भगवान के कर्म महान हैं, उन्हें कोई कर्म करना नहीं है, वेदरूप शास्त्र बनानेवाले हैं।

उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः।
अर्को वाजसनः शृङ्गी जयन्तः सर्वविज्जयी॥ ८५॥

सबके कारण होने से उनका जन्म नहीं है, विश्व से बढ़ कर सौभाग्यशाली हैं, करुणाकर हैं, नाभि रत्न के समान सुन्दर है, सुन्दर लोचन हैं, ब्रह्मा आदि पूज्यतमों के भी पूजनीय हैं, याचकों को अन्न देते हैं, मत्स्य रूप धारण करनेवाले हैं, शत्रुओं को जीतनेवाले हैं, सब विषयों का ज्ञान रखनेवाले हैं।

सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः।
महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः॥ ८६॥

भगवान के अवयव सुवर्ण के समान हैं, विषयों और शत्रुओं से क्षोभित नहीं होते, समस्त वागीश्वरों के भी ईश्वर हैं, बड़े सरोवर के समान हैं, भगवान की माया गड्ढे के समान अति दुस्तर है, विभाग-रहित स्वरूप के हैं, उनमें समस्त भूत रहते हैं।

कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पावनोऽनिलः।
अमृतांशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः॥ ८७॥

पृथ्वी को उसका भार उतारते हुए मोदित करते हैं, कुन्द पुष्प के समान शुद्ध फल देते हैं, कुन्द के समान सुन्दर अंगवाले हैं, मेघ के समान तीनों तापों को शान्त करते हैं, स्मरणमात्र से पवित्र कर देते हैं, इल से रहित हैं, इसलिए अनिल हैं, स्वात्मानन्दरूप अमृत का भोग

करनेवाले हैं, मरण से रहित शरीरवाले हैं, सब कुछ जानते हैं, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाले हैं।

सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः।
न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थश्चाणूरान्ध्र-निषूदनः॥ ८८॥

भक्ति से सुखपूर्वक मिल जाते हैं, सुन्दर व्रत करते हैं, भगवान की सिद्धि दूसरे के अधीन नहीं है, देवों के शत्रुओं को जीतते हैं, देवताओं के शत्रुओं को तपानेवाले हैं, नीचे की ओर उगते हैं और सबके ऊपर विराजमान हैं, कारणरूप से अम्बर से भी ऊपर हैं, भगवान की अभिव्यक्तिरूप जगत कल भी रहनेवाला नहीं हैं, चाणूर नामक अन्ध्र-जाति के वीर को मारनेवाले हैं।

सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः।
अमूर्तिरनघोऽचिन्त्यो भयकृद्भयनाशनः॥ ८९॥

सहस्र किरणोंवाले हैं, अग्निरूपी सात जिह्वाएँ हैं, अग्निरूपी सात दीप्तियाँ हैं, सूर्यरूप सात घोड़े भगवान के वाहन हैं, मूर्तिहीन हैं, उनमें दुःख या पाप नहीं है, सब प्रमाणों के अविषय हैं, असन्मार्ग पर चलनेवालों में भय उत्पन्न करते हैं, वर्णाश्रम-धर्म का पालन करनेवालों का भय नष्ट करते हैं।

अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान्।
अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्धनः॥ ९०॥

अत्यन्त सूक्ष्म बृहत् हैं, तथा जगतरूप से बढ़नेवाले हैं, द्रव्यत्व का प्रीतषेध किये जानेवाले हैं, सर्वात्मक होने के कारण स्थूल हैं, तीनों गुणों के अधिष्ठाता हैं, उनमें गुणों का अभाव है, नित्य, शुद्ध और

सर्वगत हैं, किसी से भी धारण नहीं किये जाते, वे स्वयं अपने आप से ही धारण किये जाते हैं, भगवान का ताम्रवर्ण मुख अत्यन्त सुन्दर है, भगवान का प्रपंचरूप वंश पहले से ही है, अपने वंशरूप प्रपंच को बढ़ाने या नष्ट करनेवाले हैं।

भारभृत् कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः।
आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः॥ ९१ ॥

पृथ्वी का भार उठानेवाले हैं, वेदादिकों ने भगवान का ही कथन किया है, योग से प्राप्तव्य हैं, अन्तरायरहित हैं, सर्वदा सब कामनाएँ देनेवाले हैं, आश्रम के समान विश्रान्ति के स्थान हैं, समस्त अविवेकियों को सन्तप्त करते हैं, सम्पूर्ण प्रजा को क्षीण करते हैं, संसारवृक्षरूप परमात्मा के छन्दरूप सुन्दर पत्ते हैं, उनके भय से वायु समस्त भूतों का वहन करता है।

धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः।
अपराजितः सर्वसहो नियन्ता नियमो यमः॥ ९२ ॥

रामरूप में धनुष धारण करनेवाले हैं, धनुर्वेद जाननेवाले हैं, दमन करनेवालों का दण्ड हैं, यम और राजा आदि के रूप से प्रजा का दमन करते हैं, दण्ड के अधिकारियों में दण्ड का फलस्वरूप कार्य भी हैं, शत्रुओं से पराजित नहीं होते, समस्त कर्मों में समर्थ हैं, सबको अपने-अपने कार्य में नियुक्त करते हैं, भगवान के लिए कोई नियम नहीं है, भगवान के लिए कोई मृत्यु नहीं है।

सत्त्ववान् सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः।
अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत् प्रीतिवर्धनः॥ ९३ ॥

भगवान में शूरता-पराक्रम आदि सत्त्व हैं, सत्त्वगुण में प्रधानता से स्थित हैं, साधु हैं, सत्य और विधिरूप धर्म में नियत हैं, पुरुषार्थ के इच्छुक पुरुष भगवान की अभिलाषा रखते हैं, प्रिय इष्ट वस्तु निवेदन करने योग्य है, पूजा के साधनों से पूजनीय हैं, स्तुति आदि के द्वारा भजनेवालों का प्रिय करते हैं, उन्हीं की प्रीति भी बढ़ाते हैं।

विहायसगतिर्ज्योतिः सुरुचिर्हुतभुग्विभुः।
रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः॥ ९४॥

उनकी गति आकाश है, स्वयं ही प्रकाशित होते हैं, सुन्दर रुचिवाले हैं, समस्त देवताओं के किये हुए कर्मों में आहुतियों को स्वयं भोगते हैं, तीनों लोकों के प्रभु हैं, रसों को ग्रहण करते हैं, विविध प्रकार से सुशोभित होते हैं, शोभा को जन्म देते हैं, सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति करनेवाले हैं, सूर्य, भगवान का नेत्र हैं।

अनन्तो हुतभुग्भोक्ता सुखदो नैकजोऽग्रजः।
अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः॥ ९५॥

सर्वगत होने के कारण भगवान अनन्त हैं, हवन किये हुए को भोगते हैं, भक्तों को मोक्षरूप सुख देते हैं, बारम्बार जन्म लेनेवाले हैं, सबसे आगे उत्पन्न होते हैं, परमात्मा को खेद नहीं है, साधुओं को क्षमा करते हैं, ब्रह्म के आश्रय से तीनों लोक स्थित हैं, अद्भुत स्वरूप, शक्ति, व्यापार और कार्य करनेवाले हैं।

सनात् सनातनतमः कपिलः कपिरव्ययः।
स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्स्वस्ति स्वस्तिभुक् स्वस्तिदक्षिणः॥ ९६॥

आदि सनातनों से भी अत्यन्त सनातन हैं, बड़वानलरूप हैं, वराह भगवान कपि हैं, प्रलयकाल में जगत भगवान में विलीन होते हैं,

भक्तों को मंगल देते हैं, वह स्वस्ति ही करते हैं, निजस्वरूप परमानन्दरूप है, भक्तों के मंगल की रक्षा करते हैं, स्वस्ति करने में समर्थ हैं।

अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः।
शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्वरीकरः॥ ९७॥

उनमें कर्म, राग, और कोप ये रौद्र नहीं हैं, शेषरूपधारी हैं, सुदर्शन चक्रधारी हैं, भगवान की शूर-वीरता समस्त पुरुषों से विलक्षण है, उनका शासन अत्यन्त उत्कृष्ट है, शब्द से नहीं कहे जा सकते, समस्त वेद भगवान का ही वर्णन करते हैं, विश्राम के स्थान हैं, उनके प्रताप से संसारियों के लिए आत्मा रात्रि है और ज्ञानियों के लिए संसार ही रात्रि है।

अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणां वरः।
विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः॥ ९८॥

भगवान में क्रूरता नहीं है, कर्म, मन, वाणी और शरीर से सुन्दर हैं, क्षमा में पृथ्वी के समान हैं, सब प्रकार के ज्ञान से युक्त हैं, संसाररूप भय से निवृत्त हैं, भगवान का श्रवण और कीर्तन पुण्यरूप हैं।

उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः।
वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः॥ ९९॥

संसार-सागर से पार उतारते हैं, पाप नाम की दुष्कृतियों का हनन करते हैं, स्मरण आदि करनेवाले सब पुरुषों का पुण्यकर्म सम्पन्न करते हैं, दुःस्वप्नों को नष्ट कर देते हैं, सांसारिकता से मुक्ति देते हैं, तीनों लोकों की रक्षा करनेवाले हैं, सन्तरूप से भगवान स्वयं ही विराजते

हैं, प्राणरूप से समस्त प्रजा को जीवित रखनेवाले हैं, विश्व को सब ओर से व्याप्त करके स्थित हैं।

अनन्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः।
चतुरस्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः॥ १००॥

भगवान के अनन्त रूप हैं, भगवान की पराशक्ति अपरिमित है, क्रोध को जीते हुए हैं, पुरुषों का संसारजन्य भय नष्ट करनेवाले हैं, पुरुषों को उनके कर्मानुसार फल देते हैं, भगवान का आत्मास्वरूप गभीर है, अधिकारियों को विशेष रूप से विविध प्रकार का फल देते हैं, इन्द्रादि को अनेक प्रकार की आज्ञा देते हैं, समस्त कर्मियों को उनके कर्मों के फल देते हैं।

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः।
जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः॥ १०१॥

भगवान का कोई कारण नहीं है, भूतों के आधाररूप से प्रसिद्ध भूमि का भी आधार हैं, पृथ्वी की शोभा भी वे ही हैं, उनकी विविध गतियाँ शुभ हैं, भगवान के भुजबन्ध कल्याणरूप हैं, जन्तुओं को उत्पन्न करनेवाले हैं, जन्म लेनेवाले जीव के जन्म के मूलकारण हैं, भय का कारण हैं, भगवान का पराक्रम असुरादिकों के भय का कारण होता है।

आधारनिलयो धाता पुष्पहासः प्रजागरः।
ऊर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः॥ १०२॥

पंचभूत आधारों के भी आधार हैं, भगवान का कोई और बनानेवाला नहीं है, पुष्पों के खिलने के समान भगवान का प्रपंचरूप से विकास

होता है, प्रकर्षरूप से जागनेवाले हैं, सबसे ऊपर रहनेवाले हैं, सत्पुरुषों के कर्मों का आचरण हैं, मरे हुओं को जीवित करनेवाले हैं, ओंकार के अभेद का व्यवहार हैं, व्यवहार करनेवाले हैं।

प्रमाणं प्राणनिलयः प्राणभृत्प्राणजीवनः।
तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः॥ १०३॥

स्वयंप्रभारूप होने से भगवान प्रमाण हैं, परम पुरुष में लीन होते हैं इसलिए परमपुरुष प्राणनिलय है, अन्नरूप से प्राणों का पोषण करनेवाले हैं, प्राण नामक वायु से प्राणियों को जीवित रखनेवाले हैं, सब शब्द एक वास्तविक सत्स्वरूप ब्रह्म के ही वाचक हैं, स्वरूप को, भगवान को यथावत् जानते हैं, भगवान एक आत्मा हैं, जन्म-मृत्यु का अतिक्रमण कर जाते हैं।

भूर्भुवःस्वस्तरुस्तारः सविता प्रपितामहः।
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः॥ १०४॥

भूः, भुवः, स्वः—इनके द्वारा होमादि करके तीनों लोक की प्रजा तरती अथवा पार होती है, संसार-सागर से तारनेवाले हैं, सम्पूर्ण लोकों को उत्पन्न करनेवाले हैं, पितामह ब्रह्मा जी के भी पिता हैं, यज्ञरूप हैं, यज्ञों के स्वामी हैं, यजमानरूप से स्थित हैं, यज्ञ वराह भगवान के अंग हैं, यज्ञों का वहन करते हैं।

यज्ञभृद् यज्ञकृद् यज्ञी यज्ञभुग् यज्ञसाधनः।
यज्ञान्तकृद् यज्ञ-गुह्यमन्नमन्नाद एव च॥ १०५॥

यज्ञ की रक्षा करते हैं, जगत के आरम्भ और अन्त में यज्ञ करते हैं, आराधनात्मक यज्ञों के शेष की पूर्ति करनेवाले हैं, यज्ञ को भोगते हैं,

यज्ञ उनकी प्राप्ति का साधन हैं, यज्ञ के फल की प्राप्ति करानेवाले हैं, फल की कामना से रहित कोई भी यज्ञ गुह्य है, अन्न भी हैं, अन्न को खानेवाले भी हैं।

आत्मयोनिः स्वयञ्जातो वैखानः सामगायनः।
देवकीनन्दनः स्रष्टा क्षितीशः पापनाशनः॥ १०६॥

आत्मा ही उपादान कारण है, निमित्त कारण भी वही है, विशेष रूप से खोदने के कारण वैखान हैं, सामगान करते हैं, देवकी के पुत्र हैं, सम्पूर्ण लोकों के रचयिता हैं, पृथ्वी के स्वामी हैं, सम्पूर्ण पापराशि का नाश करनेवाले हैं।

शङ्खभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः।
रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः॥ १०७॥

पांचजन्य नामक शंख धारण करनेवाले हैं, उनके पास विद्यामय नन्दक नामक खड्ग है, चक्र सुदर्शन धारण करनेवाले हैं, उनका शार्ङ्ग नामक धनुष है, गदाधारी हैं, हाथ में चक्र है, उन्हें क्षोभित नहीं किया जा सकता, प्रहार करनेवाली सभी वस्तुएँ उनके आयुध हैं, ओंकार अन्त में मंगलाचरण के लिए है, हम आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं।

सर्वप्रहरणायुधः ॐ नम इति।

इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः।
नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम्॥ १॥

इस प्रकार से इस विष्णुसहस्रनाम को संकीर्तन किये जाने लायक परमात्मा भगवान श्रीकृष्ण [केशव] के दिव्य सहस्र नामों को पूर्ण रूप से गाया गया है।

य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत्।
नाशुभं प्राप्नुयात्किञ्चित्सोऽमुत्रेह च मानवः॥ २॥

जो व्यक्ति इस विष्णुसहस्रनाम को सदा सुनता है अथवा गाता है उसका, इस लोक में या उस लोक में, कुछ भी अमंगल नहीं होता।

वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत्।
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात्॥ ३॥

इस विष्णुसहस्रनाम का पाठ करनेवाला यदि ब्राह्मण है तो वेदान्त शास्त्र का पारंगत विद्वान बनेगा, यदि क्षत्रिय है तो विजयी होगा, वैश्य है तो धन-धान्य से परिपूर्ण होगा, यदि शूद्र है तो सुख प्राप्त करेगा।

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात्।
कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी चाप्नुयात्प्रजाम्॥ ४॥

इस विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र का पाठ करनेवाला यदि धर्म का इच्छुक है तो धर्म प्राप्त करेगा, धन का इच्छुक है तो धन प्राप्त करेगा, कामी है, तो कामनाओं को प्राप्त करेगा, सन्तान का इच्छुक है तो सन्तान को प्राप्त करेगा।

भक्तिमान् यः सदोत्थाय शुचिस्तद्गतमानसः।
सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत् प्रकीर्तयेत्॥ ५॥

यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च।
अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम्॥ ६॥

जो व्यक्ति सदा भक्तिभाव से पवित्रता पूर्वक भगवान में मन लगा कर, भगवान श्री कृष्ण के इन सहस्र नामों का संकीर्तन करता है वह

विपुल यश और अपनी जाति में प्रधानता पाता है, अचल लक्ष्मी को प्राप्त करता है और सर्वश्रेष्ठ मंगल का भागी होता है।

न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति।
भवत्यरोगो द्युतिमान् बलरूपगुणान्वितः॥ ७॥

उसे कहीं भय नहीं होता, वह वीर्य तथा तेज प्राप्त करता है, अरोगी बनता है, प्रभा, बल, रूप और गुण से युक्त होता है।

रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः॥ ८॥

रोग से पीड़ित व्यक्ति रोगमुक्त हो जाता है, जो बद्ध है वह बन्धन से मुक्त होता है, डरा हुआ व्यक्ति भय से मुक्त होता है, संकट में पड़ा हुआ व्यक्ति आपत्ति से छुटकारा पाता है।

दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः॥ ९॥

भक्ति-समन्वित व्यक्ति विष्णुसहस्रनाम द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए संकटों से शीघ्र मुक्ति पा जाता है।

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम्॥ १०॥

जो मनुष्य भगवान श्रीकृष्ण का आश्रय लेता है, भगवान श्रीकृष्ण में ही तत्पर होता है वह सम्पूर्ण पापों से विशुद्धात्मा हो कर सनातन ब्रह्म को पा लेता है।

न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्।
जन्ममृत्युजराव्याधि-भयं नैवोपजायते ॥ ११ ॥

जो भगवान श्रीकृष्ण के भक्त बनते हैं संसार में उनका कहीं कुछ भी अशुभ नहीं होता और जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि से भय नहीं होता।

इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।
युज्येतात्मा सुखक्षान्तिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥ १२ ॥

श्रद्धा-भक्ति से युक्त जो व्यक्ति इस स्तोत्र को पढ़ता है वह सुख, शान्ति [क्षमा], लक्ष्मी, धैर्य, स्मरणशक्ति और कीर्ति से अलंकृत हो जाता है।

न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥ १३ ॥

जिन्होंने पुण्य किये होते हैं, वे ही भगवान श्रीकृष्ण के भक्त होते हैं, इसलिए न उनमें क्रोध रह जाता है न मात्सर्य, न लोभ रह जाता है, न अशुभ बुद्धि रह जाती है।

द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः।
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥ १४ ॥

भगवान श्रीकृष्ण के प्रताप के कारण चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र सहित यह पृथ्वी, आकाश, दिशाएँ और समुद्र टिके हुए हैं।

ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम्।
जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥ १५ ॥

सुर, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षस सहित यह सचराचर जगत भगवान श्रीकृष्ण के वश में है।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः।
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च॥ १६॥

सम्पूर्ण इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, सत्त्व, तेजस, बल, धैर्य, क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ, इन सबको मुनिजन वासुदेवमय बनाते हैं।

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः॥ १७॥

सम्पूर्ण शास्त्रों में आचार की मुख्य रूप से परिकल्पना की गयी है, आचार से धर्म का प्रादुर्भाव होता है और धर्म के स्वामी भगवान श्रीकृष्ण हैं।

ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः।
जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम्॥ १८॥

ऋषि, पितर, देवता, महाभूत, धातुएँ और यह सम्पूर्ण जड़-चेतनात्मक जगत, यह सब भगवान नारायण से उत्पन्न हुए हैं।

योगो ज्ञानं तथा साङ्ख्यं विद्याः शिल्पादिकर्म च।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत् सर्वं जनार्दनात्॥ १९॥

योग, ज्ञान, सांख्यशास्त्र, चतुर्दश विद्याएँ, शिल्प, इत्यादि कर्म, वेद, शास्त्र तथा विज्ञान, यह सभी जनार्दन भगवान श्रीकृष्ण से प्रादुर्भूत होते हैं।

एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः।
त्रीँल्लोकान्व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः॥ २० ॥

भगवान विष्णु प्रधान महाभूत हैं, अलग-अलग प्राणी तो अधिक हैं। परमात्मा परब्रह्म अव्यय होने पर भी भूतात्मा बन कर तीनों लोकों में व्याप्त होते हुए विश्वभुक् बन कर उपभोग करते हैं।

इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम्।
पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च॥ २१ ॥

भगवान विष्णु का यह स्तोत्र व्यास ने गाया है। जो पुरुष श्रेय और सुख प्राप्त करना चाहता है उसे चाहिए कि वह इस स्तोत्र का पाठ करे।

विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम्।
भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम्॥ २२ ॥

जो व्यक्ति विश्व के अधीश्वर, अजन्मे, संसार की उत्पत्ति और संहार करनेवाले देव, कमल-नयन भगवान श्रीकृष्ण का भजन करते हैं वे पराजय प्राप्त नहीं करते।

हरि ॐ तत् सदिति श्रीमन्महाभारते
शतसाहस्र्यांसंहितायां वैयासिक्यामानुशासनिके
पर्वणि दानधर्मेषु भीष्मयुधिष्ठिरसंवादे
श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्रनामस्तोत्रम्।

व्यास के द्वारा रचे गये शत्साहस्री संहिता नामक महाभारत के अनुशासन पर्व में दान-धर्म के प्रसंग में जो भीष्म और युधिष्ठिर का

संवाद हुआ था उसमें विष्णु भगवान का दिव्य सहस्र नाम स्तोत्र सम्पूर्ण हुआ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

परमात्मा पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है, पूर्ण से ही पूर्ण बन सकता है। पूर्ण में से पूर्ण ले लेने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

सायंप्रातः की आरती

ॐ नमः पार्वतीपतये हर हर हर महादेव।

गणेशपुरी योगभूमी पवित्र
तिथे नांदतो योगिराजा समर्थ।
तया आठवीतां परमानन्द प्राप्ति
नमस्कार माझा श्रीनित्यानंदासी॥

गणेशपुरी पवित्र योगभूमि है, जहाँ समर्थ योगीराज [भगवान नित्यानन्द स्वामी महाराज] का वास है। जिनका केवल स्मरण करने से परमानन्द की प्राप्ति होती है उन श्री नित्यानन्द स्वामी महाराज को मैं वन्दन करता हूँ।

आरती अवधूता जय जय आरती गुरुनाथा॥ धृवपदम्॥
ज्ञान-दान देउनि भक्ता, ज्ञान-दान देउनि भक्ता
सुख देसी नित्या। जय जय आरती अवधूता [धृ]
मी-तूंपणाचे भाव हरपुनी, मी-तूंपणाचे भाव हरपुनी
समता दे चित्ता। जय जय आरती अवधूता [धृ]
नित्यानंद तूंचि दत्त, नित्यानंद तूंचि दत्त
हरिहर जगत्राता। जय जय आरती अवधूता [धृ]
मुक्तानंद म्हणे श्रीगुरुदेवा, मुक्तानंद म्हणे श्रीगुरुदेवा
तूंचि मातापिता। जय जय आरती अवधूता [धृ]

हे अवधूत, हे गुरुनाथ, आपकी जय-जयकार हो॥धृ॥
आप अपने भक्तों को ज्ञानदान दे कर सुखी बना देते हैं। भक्तों का

द्वैतभाव नष्ट करके उनके चित्त में समभाव उदित कर देते हैं। आप ही भगवान नित्यानन्द और आप ही भगवान दत्तात्रेय हैं; आप ही हरि बन कर जगत का उद्धार करते हैं। मुक्तानन्द का कहना है, हे श्रीगुरुदेव आप ही मेरे माता पिता हैं।

मागणें ते आहे एक तुझ्यापाशीं
देशील तरी पाहीं श्रीगुरुनाथा।
सर्वदा वाचे वदो नित्यानंद नाम
सर्वां भूतीं मैत्री आणि मुदिता।
या जगीं घडो अनवरत विश्वबंधुत्वप्रेम
चित्तपूर्ण स्थिरता। मुक्तानंद म्हणे श्रीगुरुनाथा
नाश होऊं दे या जगाची विषमता॥ १॥

हे श्रीगुरुनाथ! मेरी एक ही माँग है, दे सकेंगे तो महान कृपा होगी। मेरी जिव्हा सतत नित्यानन्द नाम का उच्चारण करती रहे और सारे भूतमात्र में मुझे मित्रता और आनन्द की अनुभूति हो। इस जगत में विश्वबन्धुत्व और परस्पर प्रेमभाव का अखण्ड साम्राज्य हो और चित्त को पूर्ण स्थिरता प्राप्त हो। मुक्तानन्द की प्रार्थना है कि हे श्रीगुरुनाथ, आपकी कृपा से इस जगत में विषमता का नाम तक शेष न रहे।

गजाननं भूतगणादिसेवितं
कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं
नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्॥ २॥

भूत-प्रेतादिगणों द्वारा सेवित, कैथ एवं जामुन के फलों का उत्तम भोजन करनेवाले, शोक का नाश करनेवाले, उमा के पुत्र,

गज-मुख, सर्व विघ्न दूर करनेवाले गणेश के चरण-कमलों में मैं नमन करता हूँ।

हरिः ॐ

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्तये।
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे॥ ३॥

जिनका स्वरूप सत्-चित् और आनन्दमय है, जो संसार के प्रपंचों से रहित हैं, शान्तस्वरूप हैं, जिनका अन्य कोई आलम्बन नहीं है, जो तेजोमूर्ति हैं, ऐसे शिवस्वरूप श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

नित्यानन्दाय गुरवे शिष्यसंसारहारिणे।
भक्तकार्यैकदेहाय नमस्ते चित्सदात्मने॥ ४॥

शिष्यों के संसार-प्रपंच का हरण करनेवाले, केवल भक्तों के कारण ही सगुण देहधारी, चित्स्वरूप, सत्स्वरूप और नित्य आनन्दस्वरूप गुरुदेव नित्यानन्द को नमस्कार है।

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम्।
वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम्॥ ५॥

मैं उमा के पति देवाधिदेव शिव की वन्दना करता हूँ। देवताओं के गुरु और जगत के कारणभूत शिव की मैं वन्दना करता हूँ। सर्पों के आभूषण पहननेवाले, मृगचर्म को धारण करनेवाले, जीवों के स्वामी शिव की मैं वन्दना करता हूँ। सूर्य, चन्द्र और अग्नि जिनके तीन नेत्र हैं, ऐसे त्रिलोचन शिव की मैं वन्दना करता हूँ, विष्णु के प्रिय शिव की मैं

वन्दना करता हूँ। भक्त जनों के परम आश्रयरूप और वरों के प्रदाता शिव की मैं वन्दना करता हूँ। कल्याणकारी और सभी प्राणियों को सुखी-शान्त बनानेवाले शिव की मैं वन्दना करता हूँ।

शान्तं पद्मासनस्थं शशिधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षिणाङ्गे वहन्तम्।
नागं पाशं च घण्टां डमरुकसहितं साङ्कुशं वामभागे
नानाऽलङ्कारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि॥ ६॥

स्वभाव से ही शान्त, पद्मासन में बैठे हुए, चन्द्रमा का मुकुट पहने हुए, पाँच मुखवाले, तीन नेत्रवाले, दायीं ओर के हाथों में त्रिशूल, वज्र, तलवार, परशु और अभयमुद्रा को धारण करनेवाले, बाँयी ओर के हाथों में सर्प, पाश, घण्टा, डमरु और अंकुश धारण करनेवाले, अनेक अलंकारों से विभूषित, शुद्ध स्फटिक मणि के समान कान्तिवाले पार्वती के पति को मैं नमस्कार करता हूँ।

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि॥ ७॥

कपूर के समान गौर वर्ण, करुणा व दया के अवतारस्वरूप, समस्त संसार के सारभूत, सर्पों के राजा शेषनाग को हार की तरह गले में पहने हुए, भवानी के साथ सबके हृदय-कमल में निवास करनेवाले शिव को मैं नमस्कार करता हूँ।

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुर-तरुवर-शाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥ ८॥

हे ईश, आपके दिव्य गुणों को लिखने के लिए समुद्र के पात्र में काला पर्वत स्याही बने, विशाल कल्पवृक्ष की शाखा-कलम बने, सम्पूर्ण पृथ्वी पृष्ठ बने, और इस सब सामग्री को ले कर सरस्वती अनन्त काल तक लिखती ही रहें, तब भी वे आपके गुणों का पार नहीं पा सकतीं।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥ ९ ॥

हे प्रभो, आप ही मेरी माता हैं, पिता भी आप हैं, बन्धु भी आप हैं और मित्र भी आप हैं, आप ही विद्या हैं और आप ही धन हैं, हे देवों के देव महादेव, आप ही मेरा सर्वस्व हैं।

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥ १० ॥

हाथों और पैरों से किये गये, वाणी और शरीर से पैदा हुए अथवा कानों और नेत्रों से उत्पन्न, मन से हुए अथवा किसी भी कर्म से उत्पन्न, जान कर किये गये या अनजाने में किये गये मेरे किसी भी अपराध को, हे करुणा के सागर, हे महादेव, हे शम्भो शंकर, क्षमा करो; हे प्रभो आपकी जय हो, जय हो।

चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे
सर्पैर्भूषित-कण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थ-वैश्वानरे।
दन्तित्वक्कृत-सुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं कर्मभिः॥ ११ ॥

चन्द्र की कान्ति से देदीप्यमान मस्तकवाले, कामदेव का नाश करनेवाले, गंगा को धारण करनेवाले, कल्याण करनेवाले, जिनका कण्ठ और जिनके कर्णों के छिद्र सर्पों से अलंकृत हैं, जिनके नेत्र से वैश्वानर अग्नि प्रकट हुई है, हाथी के चर्म का बना सुन्दर वस्त्र धारण करनेवाले, तीनों लोकों के सारभूत, तापों को हरनेवाले भगवान शिव में मोक्ष-प्राप्ति के लिए, अपनी चित्त-वृत्ति को अचल बनाओ, अन्य कर्मों से क्या?

हरिः ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ १२॥

अज्ञान का हरण करनेवाले, ॐकार स्वरूप उस 'तत्' पद से लक्षित पुरुष को हम जानें, महादेव का हम ध्यान करें, जिससे वे रुद्र हमें आगे की ओर प्रेरित करते रहें।

ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये
सहस्रपादाऽक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते
सहस्रकोटी-युगधारिणे नमः॥ १३॥

सहस्र मुखवाले, सहस्र पैर, नेत्र, मस्तक, वक्ष और बाहुवाले, सहस्र नामवाले और सहस्र कोटि युगों को धारण करनेवाले, नित्य, अविनाशी, अनन्तपुरुष परमात्मा को नमस्कार हो, नमस्कार हो।

विष्णुब्रह्मेन्द्रदेवै रजतगिरितटात् प्रार्थितो योऽवतीर्य
शाक्याद्युद्दामकण्ठी-रवनखरकराघातसञ्जातमूर्च्छाम्।
छन्दोधेनुं यतीन्द्रः प्रकृतिमगमयत् सूक्तिपीयूषवर्षैः
सोऽयं श्रीशङ्कराचार्यो भवदवदहनात्पातु लोकानजस्रम्॥ १४॥

विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं के द्वारा प्रार्थना करने पर जो कैलास पर्वत के ऊँचे शिखर से उतर कर अवतीर्ण हुए और जिन्होंने यतियों में श्रेष्ठ बन कर अपने सुवचनरूपी अमृत की वृष्टि से शाक्य आदि मनुष्यरूपी सिंहों द्वारा तीक्ष्ण नखों के आघात से मूर्च्छा से प्राप्त हुई वेदरूपी गौमाता को पुनः स्वस्थ बनाया, वही ये श्रीशंकराचार्य इस लोक की, संसाररूपी दावानल द्वारा जलने से निरन्तर रक्षा करें।

पूर्णः पीयूषभानुर्भवमरु-तपनोद्दाम-तापाकुलानां
प्रौढाज्ञानान्धकारावृत-विषम-पथ-भ्राम्यतामंशुमाली।
कल्पः शाखी यतीनां विगतधनसुतादीषणानां सदा नः
पायाच्छ्रीपद्मपादादिम-मुनिसहितः श्रीमदाचार्यवर्यः॥ १५॥

जो भगवान शंकराचार्य संसाररूपी मरु प्रदेश में पड़े हुए सूर्य के प्रचण्ड ताप से व्याकुल मनुष्यों के लिए शीतलता देनेवाले पूर्णिमा के चन्द्र के समान हैं, घोर अज्ञानरूपी अन्धकार से घिरे और मार्ग में भटकते हुए जनों के लिए जो ज्ञानरूपी सूर्य हैं, धन, पुत्र और लोक आदि की कामनाओं से रहित जो यति-मुनियों का वर्ग है, उनके लिए जो सर्वदा कल्पवृक्ष के समान हैं, श्रीपद्मपाद आदि शिष्यमुनि समुदाय के सहित वे आचार्यों में श्रेष्ठ श्रीमान् शंकराचार्य हमारी रक्षा करें।

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरु तं नमामि॥ १६॥

ब्रह्मानन्दस्वरूप, सर्वोत्कृष्ट नित्य सुख को देनेवाले, अज्ञानरहित, केवल मूर्तिमान् ज्ञानस्वरूप, राग-द्वेषादि द्वन्द्व से रहित, आकाश की तरह सर्वव्यापी, 'तत्त्वमसि' ऐसे महावाक्य के लक्ष्य, एक, नित्य, मलरहित, अचल, सर्व की प्रज्ञा के साक्षीभूत, भावविकारों से अतीत, तीनों गुणों से रहित उन सद्गुरु को मैं नमन करता हूँ।

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम्।
श्रीशङ्कराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यं
तं तोटकं वार्त्तिककारमन्यानस्मद्गुरुन् सन्ततमानतोऽस्मि॥ १७॥

जगत के आदि गुरु नारायण को, ब्रह्मा, वसिष्ठ और शक्ति को तथा उनके पुत्र पराशर को, उनके पुत्र व्यासदेव को, व्यासदेव के शिष्यपुत्र शुकदेव को, गौडपाद तथा उनके महान योगीन्द्र शिष्य गोविन्दाचार्य को और उनके परम शिष्य श्रीशंकराचार्य को, उनके शिष्य-समुदाय में पद्मपाद, हस्तामलकाचार्य, तोटकाचार्य और वार्त्तिक बनानेवाले सुरेश्वराचार्य को तथा अपने अन्य सभी गुरुओं को मैं सतत नमस्कार करता हूँ।

विश्वं दर्पण-दृश्यमाननगरी-तुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोध-समये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥ १८॥

जो अपने अन्दर विद्यमान विश्व को दर्पण में दिखनेवाली नगरी के तुल्य देखते हैं और जैसे निद्रा के द्वारा स्वप्नादि बाहर उत्पन्न हुए से दिखाई देते हैं, वैसे ही जो अपने में रहने पर भी विश्व को माया के द्वारा बाहर उत्पन्न हुए के समान देखते हैं, जो प्रत्यक्ष अनुभव के

समय अपने ही अद्वय स्वरूप का साक्षात्कार करा देते हैं, उन दक्षिणामूर्तिरूप शिव की गुरुमूर्ति को नमस्कार है।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥ १९॥

जिन्होंने सम्पूर्ण मण्डलाकार ब्रह्माण्ड को, चर और अचर जगत को व्याप्त कर रखा है, और जिन्होंने 'तत्त्वमसि' यानी 'वह तू ही है' इस परम पद का दर्शन कराया है, ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर् गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥ २०॥

शिष्य के चित्त में ज्ञान की उत्पत्ति करने के कारण गुरुदेव ही ब्रह्मा हैं, उत्पन्न ज्ञान की रक्षा करनेवाले गुरुदेव विष्णु भी हैं और मलों का नाश करने के कारण गुरुदेव ही महेश्वर हैं। गुरु साक्षात् साकार ब्रह्म हैं, ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है।

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शङ्करं लोकशङ्करम्॥ २१॥

वेद, स्मृति, पुराण आदि के भण्डार, करुणा के आगार, लोगों को सुखी करनेवले भगवान शंकराचार्य को मैं नमस्कार करता हूँ।

शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः॥ २२॥

विष्णु के अवतार व्यासदेव को, जिन्होंने ब्रह्मसूत्र की रचना की और शंकर के अवतार शंकराचार्य को, जिन्होंने उन पर भाष्य लिखा, इन दोनों भगवत्स्वरूपों की मैं बार-बार वन्दना करता हूँ।

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने।
व्योमवद् व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः॥२३॥

जो ईश्वर, गुरु और आत्मा इन तीन भिन्न रूपों में विभक्त होने पर भी आकाश की तरह सर्वव्यापी और अविभक्त स्वरूप में हैं, उन दक्षिणामूर्ति शिवगुरु को नमस्कार है।

हरिः ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥२४॥

ब्रह्मज्ञानी विद्वानों ने सत्कर्मरूपी यज्ञ द्वारा यज्ञस्वरूप परमात्मा की आराधना की। यज्ञ के लिए किये जानेवाले सभी शुभकर्म पहले धर्म के रूप में जाने जाते थे। तत्त्व को जाननेवाले वे विद्वान उन यज्ञकर्मों से महिमाशाली बन कर स्वर्ग को प्राप्त हुए जहाँ साधना के लक्ष्यरूप अनेक देवता रहते हैं।

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे।
स मे कामान् कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु।
कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः॥२५॥

राजाओं के भी राजा, तुरन्त सहाय करनेवाले कुबेर भगवान को हम नमस्कार करते हैं। वे कामेश्वर कुबेर कामनाओं की कामना करनेवाले मेरे लिए कामनाओं का दान करें। वैश्रवण कुल में उत्पन्न, महाराजा कुबेर को नमस्कार है।

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥२६॥

वे सर्वत्र आँखोंवाले, सब ओर मुखवाले, सर्वत्र हाथवाले और सर्वत्र पैरोंवाले हैं। वे परमात्मा मनुष्य आदि प्राणियों को दो हाथों से और पक्षियों को दो पंखों से युक्त करते हैं। वे पृथ्वी और आकाश को उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर एक ही हैं।

नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर॥ २७॥

यथासमय उत्पन्न होनेवाले अनेक सुगन्धित पुष्पों की पुष्पांजलि मैं आपको अर्पण करता हूँ। हे परमेश्वर! आप ग्रहण करें।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः॥ २८॥

यह मेरी वाणीरूप पूजा है जिसे मैंने भगवान शंकर के चरणों में अर्पित किया है। इस पूजा से देवों के देव भगवान सदाशिव मुझ पर प्रसन्न हों।

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत्।
तत् सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर॥ २९॥

इस वाङ्मयी पूजा में कोई अक्षर, शब्द अथवा मात्रा आदि की न्यूनता से कोई दोष आ गया हो, तो हे परमेश्वर, उन सबको क्षमा करना। हे देव, मुझ पर प्रसन्न रहना।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥ ३०॥

परमात्मा पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है, पूर्ण से ही पूर्ण बन सकता है। पूर्ण में से पूर्ण ले लेने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

हरिः ॐ तत्सत्, हरिः ॐ तत्सत्, हरिः ॐ तत्सत्॥

उपनिषद् मन्त्र

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ १ ॥

जिस तरह जगत में व्याप्त एक ही अग्नि अलग-अलग पदार्थों की संगति से उन-उन रूपों को धारण करती है, उसी तरह सर्व भूतों के अन्दर रहनेवाला आत्मा एक होते हुए भी हर एक रूपधारी के साथ उस-उस रूप का बन जाता है और उसके बाहर अलिप्त भी रहता है।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ २ ॥

जिस तरह एक ही वायु जगत में प्रवेश करके अलग-अलग पदार्थों के आधार से उन-उन आकारों को धारण करती है, उसी तरह सर्व भूतों के अन्दर रहनेवाला आत्मा एक होते हुए भी हर एक रूपधारी के साथ उस-उस रूप का बनता है और उसके बाहर अलिप्तभाव से भी रहता है।

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर् न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्य ॥३ ॥

सब लोकों का नेत्ररूप सूर्य जिस तरह साधारण नेत्रों के बाह्य दोषों से अछूता रहता है, उसी तरह सब भूतों के अन्दर रहनेवाला आत्मा बाहर भी अलिप्त भाव से रहने के कारण लोक-दुःख से लिप्त नहीं होता।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ ४ ॥

जो धीरपुरुष एक, स्वायत्त, सब भूतों में व्याप्त, एक ही स्वरूप को अनेक तरह से बनानेवाले परमेश्वर को अपने में स्थित देख लेते हैं, उन्हीं को शाश्वत सुख मिलता है, दूसरों को नहीं।

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानाम
एको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः
तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ ५ ॥

धीर पुरुष सब अनित्य पदार्थों में पाये जानेवाले एक, नित्य और सभी चेतन पदार्थों को चेतना देनेवाले, स्वयं एक हो कर अनेकों की कामनाओं को पूर्ण करनेवाले परमेश्वर को अपने में स्थित देख लेते हैं, उन्हीं को शाश्वत शान्ति मिलती है, दूसरों को नहीं।

शुक उवाच
महाप्रसादे गोविन्दे नाम्नि ब्रह्मणि वैष्णवे।
स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते ॥ ६ ॥

शुक बोले,

हे राजन्! महाप्रसाद में, गोविन्द में, भगवन्नाम में, ब्रह्मज्ञानी में, वैष्णव जन में अल्प पुण्यशाली पुरुषों को ही विश्वास नहीं होता है।

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।

अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥ ७ ॥

शैव 'शिव' रूप में जिसकी उपासना करते हैं, वेदान्ती 'ब्रह्म' रूप से, बौद्ध 'बुद्ध' कह कर, प्रमाण में कुशल नैय्यायिक 'कर्ता' रूप से, जैन धर्मानुयायी 'अर्हत्' और मीमांसक जिनकी 'कर्म' रूप से उपासना करते हैं, वे तीन लोकों के नाथ ये हरि ही हैं, वे आपको इच्छित फल प्रदान करें।

न देशनियमो राजन् न कालनियमस्तथा।
विद्यते नात्र सन्देहो विष्णुनामानुकीर्तने ॥ ८ ॥

हे राजन्, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि विष्णु के नाम-संकीर्तन में न कोई देश का नियम है और न तो काल का ही कोई नियम है। अर्थात् किसी भी स्थान पर, किसी भी समय भगवान के नाम को गाया जा सकता है।

कालोऽस्ति यज्ञदाने वा स्नाने कालोऽस्ति वा जपे।
विष्णुसङ्कीर्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीपते ॥ ९ ॥

हे पृथ्वीपति! यज्ञ में, दान में काल का विचार है और स्नान तथा जप में भी समय का विचार है, लेकिन इस लोक में विष्णु का नाम गाने में कोई भी काल बाधक नहीं है।

निकटमेव दृश्यते कृतान्तनगरं ध्रुवम्।
शिवं स्मर शिवं ध्याहि शिवं चिन्तय सर्वदा ॥ १० ॥

यमराज की नगरी निश्चय ही निकट दिखाई देती है, इसलिए शिव का स्मरण कर, शिव का ध्यान कर, सदा शिव का चिन्तन कर।

अहं शिवः शिवश्चायं त्वं चापि शिव एव हि।
सर्वं शिवमयं ब्रह्म शिवात् परं न किञ्चन॥ ११॥

मैं शिव हूँ, यह शिव है और तुम भी शिव ही हो, सब कुछ शिवमय है, शिव से परे कुछ नहीं है।

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति॥ १२॥

जो परमात्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं, जो सबकी हृदयगुहा के भीतर स्थित हैं, जो अखिल विश्व की रचना करते हैं तथा स्वयं विश्वरूप हो कर अनेक रूप धारण करते हैं, जो समस्त जगत को सब ओर से घेरे हुए हैं, उन एक परशिव को जान कर मनुष्य नित्य और असीम शान्ति प्राप्त कर लेता है।

सर्वगं सर्वकर्तारं सर्वं सर्वावभासकम्।
सर्वावलम्बनं शान्तं शिवं पूर्णं भजाम्यहम्॥ १३॥

मैं, सर्वत्र गमनशील, सर्व के कर्ता, स्वयं सब कुछ, सर्व के प्रकाशक, सर्व के आधार, शान्त, पूर्ण शिव को भजता हूँ।

सर्गादिकाले भगवान्विरिञ्चिर्
उपास्यैनं सर्वसामर्थ्यमाप।
तुतोष चित्ते वाञ्छितार्थांश्च लब्ध्वा
धन्यः सोपास्योपासको भवति धाता॥ १४॥

सृष्टि के आदिकाल में भगवान ब्रह्मा ने इनकी उपासना करके सृष्टि रचने की सामर्थ्य प्राप्त की और इच्छित फलों को प्राप्त कर हृदय में सन्तुष्ट हो गये। धन्य है, वह विधाता ही उपास्य और उपासक बनता है।

कुलं पवित्रं पितरः समुद्धृता
वसुन्धरा तेन च पाविता द्विजाः।
सनातनोऽनादिरनन्तविग्रहो
हृदि स्थितो यस्य सदैव शङ्करः॥ १५॥

जिसके हृदय में सनातन, अनादि, अनन्त विग्रहरूप शंकर सदा निवास करते हैं, उसका कुल पवित्र हो गया है, उसके पितरों का उद्धार हो गया है, उससे यह पृथ्वी और ब्राह्मण पवित्र हो गये हैं।

शिबिरुवाच
सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात्॥ १६॥

सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी लोग सर्वत्र कल्याण को देखें, किसी को भी कभी दुःख न हो।

॥ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

श्रीशिवमहिम्नः स्तोत्रम्

गजाननं भूतगणादिसेवितं
कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं
नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्॥

भूत-प्रेतादिगणों द्वारा सेवित, कैथ एवं जामुन के फलों का उत्तम भोजन करनेवाले, शोक का नाश करनेवाले, उमा के पुत्र, गज-मुख, सर्व विघ्न दूर करनेवाले गणेश के चरण-कमलों में मैं नमन करता हूँ।

श्री पुष्पदन्त उवाच
महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः॥ १॥

पुष्पदन्त बोले
सर्व जनों के तप और पाप हरनेवाले हे शिव! निर्गुण-निराकारी आपकी महिमा को पूर्ण रूप से न समझनेवाले मनुष्य द्वारा की गयी आपकी स्तुति यदि आपके योग्य नहीं है तो फिर ब्रह्मा आदि देवों द्वारा की गयी स्तुति भी आपके विषय में अयोग्य ही है। यदि सभी अपनी-अपनी बुद्धिशक्ति के अनुरूप ही स्तुति करने में निर्दोष हैं, तो हे शिव! आपकी स्तुति करने में मेरा यह प्रयत्न भी अनिन्दनीय होना चाहिए।

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयोर्
अतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः॥ २॥

हे महादेव, आपकी महिमा वाणी और मन के विषय से भी परे है, क्योंकि आपकी महिमा को वेद भी कहीं अनुचित वर्णन न हो इस भय से आश्चर्यचकित हो कर कहते हैं—उन परमात्मा की कौन स्तुति कर सकता है, उनके कितने गुण हैं, वे किसके विषय हैं, इन सब बातों को कौन जान सकता है? फिर भी ऐसा कौन है जिसका मन और वाणी आपके इस परम रमणीय स्वरूप में तन्मय नहीं हो जाते हैं।

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवतः
तव ब्रह्मन्किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम्।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता॥ ३॥

हे परब्रह्मस्वरूप शिव, संसार के मधुर पदार्थों से भी अतिशय मधुर अमृतमय वेदवाणी को बनानेवाले देवताओं के गुरु बृहस्पति की वाणी भी आपको आश्चर्य में नहीं डाल सकती, वह भी आपके लिए साधारण ही है। फिर हे त्रिपुरारि! मैं अपनी इस वाणी को आपके गुणगान करने के पुण्य से पवित्र कर लूँ, ऐसा सोच कर आपके स्तुतिरूप कार्य में मेरी बुद्धि तत्पर हुई है।

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु।

अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥ ४ ॥

हे वरदान देनेवाले शिव! जगत का उदय, पालन एवं प्रलय करनेवाले आपके ऐश्वर्य का ऋग्, यजुष् और सामवेद वास्तविक रूप से प्रतिपादन करते हैं। सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों के भेद से ब्रह्मा, विष्णु, महेश की अलग-अलग तीन शरीर-मूर्तियों में बँटा हुआ, ब्रह्माण्ड-भर में प्रसिद्ध जो आपका ऐश्वर्य है, उसका खण्डन करने के लिए कुछ जड़ बुद्धि के लोगों को अच्छी लगनेवाली, लेकिन वास्तव में अहितकारी मिथ्या-चर्चा को करते रहते हैं।

किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥ ५ ॥

तीनों लोकों का निर्माण करनेवाले ब्रह्मा किस इच्छा से, किस शरीर से, किन उपायों द्वारा, क्या आधार ले कर, कौन-सी सामग्री द्वारा त्रिभुवन की रचना करते हैं, इस प्रकार का यह कुतर्क अथवा प्रश्न-जाल आपके तर्कातीत ऐश्वर्य में अवकाश न पाने के कारण डाँवाडोल स्थितिवाले जगत को अज्ञान में रखने के लिए कुछ बुद्धिहीन लोगों को वाचाल बनाता रहता है।

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगतां
अधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति।
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥ ६ ॥

देवताओं में श्रेष्ठ हे शिव, प्रत्यक्ष अनुभव में आनेवाले ये पृथ्वी आदि लोक अवयवों से युक्त होने पर भी क्या जन्मरहित हो सकते हैं? क्या जगत के विधि अर्थात् उत्पत्ति-विलय आदि कार्य, कर्ता के बिना हो सकते हैं? और यदि ईश्वर से भिन्न किसी अन्य ने लोकों की उत्पत्ति की है तो उसकी साधन-सामग्री क्या थी? इसलिए वे मन्दभाग्य और मन्दबुद्धि ही हैं जो आपके विषय में ऐसी शंकाएँ किया करते हैं।

त्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजु-कुटिल-नानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥ ७॥

तीनों वेद, सांख्य, योगशास्त्र, शैवमत, वैष्णवमत आदि भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरवाले, हमारा मार्ग ही अन्य सब मार्गों से श्रेष्ठ और चलने योग्य है, ऐसा कहा करते हैं। वस्तुतः जैसे सीधे और टेढ़े-मेढ़े अनेक मार्गों से जाने पर भी जलप्रवाह का गन्तव्य स्थान समुद्र ही होता है, वैसे ही रुचियों की भिन्नता होने के कारण अनेक सीधे और टेढ़े मार्गों से जानेवाले सभी मनुष्यों के लिए आप ही प्राप्त करने योग्य हैं।

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत् तव वरद तन्त्रोपकरणम्।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति॥ ८॥

हे वरदान देनेवाले शिव, आपके गृह-तन्त्र को चलाने की सामग्री में एक तो बूढ़ा बैल है, दूसरा खाट का एक पाया है, परशु है, मृगचर्म, भस्म और कुछ सर्प हैं तथा खप्पर है—इतनी ही आपकी सामग्री है,

किन्तु देवगण आपकी भौंहों के कटाक्ष से ही ऋद्धि-सिद्धियों को प्राप्त करते हैं। वस्तुतः जो अपने ही स्वरूप में रमा हुआ है, उसे विषयों की लालसा कभी भी भ्रम में नहीं डाल सकती।

ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये।
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवन्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता॥ ९॥

हे त्रिपुरारि, कोई सांख्य मत को माननेवाला इस समस्त जगत को नित्य अथवा अविनाशी कहता है, कोई बौद्ध मत को माननेवाला सारे ब्रह्माण्ड के पदार्थ-समुदाय को अनित्य अथवा नाशवान् घोषित करता है, दूसरे कोई न्यायदर्शन अथवा वैशेषिक मत के अनुयायी जगत के कुछ पदार्थों को नित्य और कुछ पदार्थों को अनित्य मानते हैं। इन सब मत-मतान्तरों से आश्चर्यचकित हो कर भी उन्हीं मत-मतान्तरों के द्वारा आपकी स्तुति करता हुआ मैं लज्जित नहीं हो रहा हूँ। सचमुच वाचालता ढीठ हुआ करती है।

तवैश्वर्यं यत्नाद् यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनल-स्कन्धवपुषः।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति॥ १०॥

हे गिरीश, आग के खम्भे के समान आपके ज्योतिर्लिंग के ऐश्वर्य की थाह पाने के लिए ब्रह्मा उस लिंग के ऊपर के भाग में और विष्णु नीचे के भाग में पूर्ण प्रयत्नपूर्वक गये, फिर भी उसका पार नहीं पा सके। तब अपनी शक्ति का गर्व छोड़ कर वे दोनों भक्ति और श्रद्धा के भार

से नम्र हो कर आपका महान गुणगान करते हुए आपके ज्योतिर्लिंग के सामने खड़े रहे। हे शिव, श्रद्धा और भक्ति के साथ किया हुआ आपका अनुसरण क्या फल नहीं देता!

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान्।
शिरः पद्मश्रेणी-रचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम्॥ ११॥

हे त्रिपुरारि, रावण तीनों लोकों को बिना प्रयत्न के ही जीत कर और निष्कण्टक बन कर त्रैलोक्य में अपने साथ युद्ध करने के लिए कोई प्रतिस्पर्धी योद्धा न मिलने के कारण युद्ध की खोज से विचलित बीस भुजाओं को धारण किये हुए स्वच्छन्द विहार करता है। यह सब आपके प्रति उसकी स्थिर भक्ति का ही फल है, क्योंकि उसने आपके चरणकमलों की पूजा के लिए अपने सिरों को काट-काट कर कमलों की माला सदृश आपके चरणों में चढ़ाया था।

अमुष्य त्वत्सेवा-समधिगतसारं भुजवनं
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः॥ १२॥

आपकी सेवा-भक्ति से प्राप्त हुई शक्ति से सम्पन्न अपनी भुजाओं के बल को आपके निवासस्थान कैलास पर्वत पर ही प्रयोग करनेवाले रावण की क्या स्थिति हुई? आपके पैर के अँगूठे का अग्रभाग तनिक-सा हिल गया कि उसे पाताल में भी ठहराव नहीं मिला। निश्चय ही जो दुष्ट होता है वह सम्मान पा कर मोह में फँस जाता है।

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सतीं
अधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः।
न तच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरि त्वच्चरणयोः
न कस्या उन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः॥ १३॥

हे वरदान देनेवाले शिव, समस्त त्रैलोक्य को अपनी आज्ञा में रखनेवाले बाणासुर ने इन्द्र की सर्वोत्कृष्ट सम्पदाओं को भी नीचे कर दिया, यह आपके चरणों में सेवाभाव से रहने का फल है, इसमें आश्चर्य नहीं! क्योंकि आपके चरणों में होनेवाली मस्तक की नम्रता किस उन्नति का कारण नहीं बनती?

अकाण्डब्रह्माण्ड-क्षयचकितदेवासुरकृपा
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः॥ १४॥

हे त्रिनयन, समुद्र-मन्थन से उत्पन्न विष से समस्त ब्रह्माण्ड के अकाल विनाश का भय उपस्थित हो गया, तब भय से कातर हुए देवों और असुरों पर कृपालु हो कर आपने उस कालकूट विष को कण्ठ में समेट लिया; इस कारण आपके कण्ठ पर जो काला धब्बा लग गया है, वह क्या आपके गले की शोभा को नहीं बढ़ाता, अर्थात् बढ़ाता ही है। जगत के भय का विनाश करने में नित्य संलग्न श्रेष्ठ पुरुषों का विकार भी प्रशंसनीय होता है। इसलिए आपका नीलकण्ठ नाम प्रशंसनीय ही है।

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।

स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः॥ १५॥

हे सर्वेश्वर! जिसके तीक्ष्ण बाण, देव, दानव और मुनष्यों से भरे हुए जगत में अपने अर्थ को सिद्ध किये बिना कहीं से कभी नहीं लौटते हैं और जो सर्वत्र विजयी है ऐसा वह कामदेव आपको अन्य देवताओं के समान सामान्य देव समझता हुआ आपके तृतीय नेत्र की अग्नि से जल कर भस्म हो गया; क्योंकि जो जितेन्द्रिय हैं, उनका अनादर हितकर नहीं होता।

मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं।
पदं विष्णोर्भ्राम्यद् भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौर्दौःस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता॥ १६॥

हे नटराज, जब आप ताण्डव-नृत्य करते हैं, तब आपके चरणों के आघात से पृथ्वी की स्थिति अचानक संशय का कारण बन जाती है, अर्थात् आपके पदाघात को न सह पाने के कारण उसकी क्या गति होगी, ऐसी सन्देह-अवस्था को प्राप्त करती है। आकाश में आपकी घूमती हुई भुजाओं के कारण बाधित ग्रह-नक्षत्रों का समूह विकल हो उठता है। आपकी खुली हुई जटाओं का आघात किसी किनारे में लग जाने के कारण द्युलोक भी बार-बार अपनी स्थिति से इधर-उधर ढुलक रहा है। यद्यपि आप जगत की रक्षा के लिए नृत्य करते हैं, तो भी जो ईशता अथवा स्वामित्व है, वह विपरीत ही हुआ करती है यानी दुःख का कारण बन जाती है।

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोदमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।

जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिमदिव्यं तव वपुः॥ १७॥

हे गंगाधर शिव, समस्त आकाश को घेरनेवाले और प्रतिबिम्बित तारों की चमक से फेन और बुद्बुदों की बढ़ी शोभावाला जो जल का प्रवाह है, वह आपके सिर पर लघु जलकण के समान देखा गया था, लेकिन उसी जलकण ने प्रचण्ड प्रवाह बन कर जगत को समुद्ररूप करधनी से घेर कर एक छोटे से द्वीप के समान बना दिया है। इसी से आपका दिव्य शरीर महिमा को धारण करनेवाला है, ऐसा समझना चाहिए।

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधिः
विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः॥ १८॥

हे त्रिपुरारि, त्रिपुरासुररूपी तृण को जलाने की इच्छावाले, आपने पृथ्वी को रथ बनाया, ब्रह्मा को सारथी बनाया, सुमेरु पर्वत को धनुष बनाया, चन्द्रमा तथा सूर्य को रथ के पहियों के रूप में कर दिया और हाथ में चक्र धारण करनेवाले विष्णु भगवान को बाण बना दिया, तो इतने छोटे से काम के लिए इतना भारी आडम्बर रचने की क्या आवश्यकता थी? वस्तुतः अपनी निर्मित वस्तुओं से खेलती हुई प्रभावशाली पुरुषों की बुद्धि पराधीन नहीं हुआ करती, वे जो चाहे करते हैं।

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयोः
यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।

गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥ १९ ॥

हे त्रिपुरारि, भगवान विष्णु ने आपके चरणों में एक सहस्र कमल-पुष्पों की भेंट चढ़ाने का निश्चय किया। उन कमलों में एक कमल कम हो जाने पर उन्होंने जो अपने नेत्रकमल को निकाल कर चढ़ा दिया, वही भक्त का अतिरेक सुदर्शन चक्ररूप में परिणत हो गया और तीनों लोकों की रक्षा के लिए आज भी सावधान है।

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥ २० ॥

यज्ञ-यागादि कर्म करनेवाले पुण्यशाली जनों के यज्ञादि कार्य निवृत्त हो जाने पर भी फल देने के लिए आप सदा जाग्रत रहते हैं। कर्म तो करने के बाद नष्ट हो गया, चैत्यपुरुष शिव की आराधना के बिना कहीं वह फल दे सकता है, अर्थात् नहीं दे सकता। इसलिए आपको यज्ञादि कर्मों में फल देने की शक्ति से सम्पन्न मान कर ही मनुष्य वेदों में विश्वास को प्रगाढ़ बना कर कर्मों को करने में दृढ़ता के साथ तत्पर रहता है कि आप फल अवश्य देंगे।

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृतां
ऋषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥ २१ ॥

हे शरणागतवत्सल शिव, यज्ञादि क्रिया में निपुण, देहधारी प्रजाओं का स्वामी दक्ष स्वयं यज्ञ करानेवाला यजमान था, बड़े-बड़े महर्षि ऋत्विक् आदि भी क्रिया करनेवाले थे, देवतागण उस यज्ञ के सम्माननीय सदस्य थे, तो भी यज्ञ-फल का विधान करने में सदा लगे हुए आपके द्वारा ही दक्ष-यज्ञ का विनाश हुआ। वह निश्चित ही था, क्योंकि यज्ञकर्ता की श्रद्धा के बिना किये गये यज्ञ का फल भी विपरीत हुआ करता है।

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः॥ २२॥

हे नाथ, काम के वशीभूत हो कर ब्रह्मा ने अपनी पुत्री के साथ बलपूर्वक रमण करने की इच्छा की, तो वह मृगी बन गयी; फिर ब्रह्मा भी मृग का रूप धारण करके उसके पीछे गये। आपने भी हाथ में धनुष उठाया और मृगरूपधारी ब्रह्मा को लक्ष्य करके व्याध की कुशलता से एक अमोघ बाण छोड़ा, जो आकाश में पहुँचे हुए भयभीत ब्रह्मा को आज भी नहीं छोड़ रहा है।

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत! देहार्धघटनात्
अवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः॥ २३॥

हे त्रिपुरविनाशक शिव, कामदेव ने सर्वसौन्दर्यों की साम्राज्ञी पार्वती के सौन्दर्य से आपको जीत लेने की कामना से अपना धनुष उठाया था, किन्तु हे योगेश्वर, पार्वती ने अपने सामने ही कामदेव को तृण

की तरह जलता हुआ देखा। हे वरदान देनेवाले शम्भो, पार्वती पर कृपा करके आपने उन्हें अपने वामांग में बैठा लिया है, इसलिए यदि वे आपको स्त्री में अनुरक्त समझती हैं तो हे प्रभो, वे समझती रहें; क्योंकि स्त्रियाँ तो भोली-भाली हुआ ही करती हैं।

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचराः
चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः।
अमाङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि॥ २४॥

हे कामान्तक, श्मशानों में आनन्द से खेलना, पिशाचों के साथ विचरना, चिताओं की राख से शरीर का आलेपन, मनुष्यों की खोपड़ियों से बनी हुई माला, इस प्रकार आपका सम्पूर्ण आचरण अमंगलजनक भले ही हो, तो भी हे वरदाता, स्मरण करनेवालों के लिए तो आप सबसे बढ़ कर मंगलरूप हैं।

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत् किल भवान्॥ २५॥

योगी लोग योगशास्त्रों में वर्णन की हुई विधि के अनुसार प्राणायाम द्वारा प्राणवायु का निरोध करके और मन को अन्तर-आत्मा में एकाग्र करके जिस अनिर्वचनीय तत्त्व का अपने अन्दर ही दर्शन करके रोमांचित होते हैं तथा नेत्रों से आनन्दाश्रु के प्रवाह को उँड़ेलते हुए मानों अमृतमय सरोवर में निमग्न हो कर जिस परमानन्द को प्राप्त करते हैं, वह तत्त्व आप ही तो हैं।

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवहः
त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि॥ २६॥

आप सूर्य हैं, आप चन्द्र हैं, आप पवन हैं, आप अग्नि हैं, आप जल हैं, आप आकाश हैं, आप पृथ्वी हैं और आप ही आत्मा हैं—इस प्रकार आपकी अष्टमूर्तियों का वर्णन मिलता है। केवल इन आठ मूर्तियों में आग्रह-बुद्धि रखनेवाले लोग आपके विषय में संकुचित और सीमित वाणी को भले ही बोलते रहें, किन्तु हम तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में किसी ऐसे तत्त्व को नहीं जानते जिसमें आप न हों।

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरान्
अकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम्॥ २७॥

हे शरणागतवत्सल शिव! ॐ यह पद अकार, उकार, मकार इन तीन अक्षरों में विभक्त हो कर ऋग्, यजुष, साम, इन तीन वेदों के रूप में; ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीन देवों के रूप में; जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं के रूप में; भूः, भुवः, स्वः इन तीन लोकों के रूप में और अन्य सभी त्रिपुटियों के रूप में आपका ही कथन करता है और वही ॐ पद विभक्त न हो कर विकार रहित शुद्ध सर्व त्रिपुटियों से परे आपके तुरीय पद का सूक्ष्म ध्वनियों द्वारा लक्ष्य करता हुआ वर्णन करता है।

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहान्
तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्।

अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रविहितनमस्योऽस्मि भवते ॥ २८ ॥

हे देव! भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महादेव, भीम और ईशान इस प्रकार ये जो आपके आठ नाम हैं, इनमें से प्रत्येक नाम की वेद भी प्रचुर विचार तथा श्रद्धापूर्वक स्तुति करते रहते हैं, ऐसे परमप्रिय, परम ज्योतिस्वरूप आपको मैं मन, वचन, कर्म से नमस्कार करता हूँ।

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमतिसर्वाय च नमः ॥ २९ ॥

हे एकान्तप्रिय, समीप से भी समीप स्थित आपको नमस्कार हो और दूर से भी सुदूर रहनेवाले आपको नमस्कार हो। हे कामनाशक, अणु से भी अणुतर आपको नमस्कार हो और महान से भी महत्तर आपको नमस्कार हो। हे त्रिलोचन, वृद्ध से भी वृद्ध कालातीत आपको नमस्कार हो, और युवा से भी युवा आपको नमस्कार हो। सर्वरूप आपको नमस्कार हो, और यह-वह, परोक्ष-प्रत्यक्ष सर्व अवस्थाओं से अतीत आपको नमस्कार हो।

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥ ३० ॥

विश्व की उत्पत्ति के लिए रजोगुणी ब्रह्मारूप आपको बारम्बार नमस्कार है। प्राणियों को सुखी करने के लिए सत्त्वगुण के अतिरेक होने पर विश्वपालक विष्णुरूप आपको अनन्त बार नमस्कार है। विश्व का संहार करते समय प्रबल तमोगुणी रुद्ररूपधारी आपको बारम्बार नमस्कार है। पूर्ण प्रकाशरूप मोक्षरूप की प्राप्ति के लिए त्रिगुणातीत शिवस्वरूप आपको बारम्बार नमस्कार है।

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधात्
वरद चरणयोस्ते वाक्य-पुष्पोपहारम्॥ ३१॥

हे वरदायक! क्लेशों के अधीन, सर्व सामर्थ्यहीन यह मेरा चित्त कहाँ, और तीनों गुणों की सीमा का अतिक्रमण करनेवाली, तीनों कालों से परे चिरन्तर आपकी महिमा कहाँ? इसलिए आपके स्तुति गान में मैं भयभीत ही था, किन्तु आपके प्रति मेरी भक्ति ने मुझे उत्साहित करके आपके चरणों में महिम्नः स्तोत्र के वाक्यरूप पुष्पों की भेंट चढ़वायी। यह स्तोत्र आपकी भक्ति का ही परिणाम है।

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुर-तरुवर-शाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥ ३२॥

हे ईश, आपके दिव्य गुणों को लिखने के लिए समुद्र के पात्र में काले पहाड़ की स्याही बने, कल्पवृक्ष की शाखा की कलम बने और पृथ्वी पृष्ठ बने तथा इन सबको ले कर सरस्वती देवी सारा समय लिखती रहें तो भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकतीं।

असुर-सुर-मुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौलेर्-
ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार॥ ३३॥

देव, असुर और मुनियों द्वारा पूजित भगवान चन्द्रमौलि के गुणों की महिमा से युक्त, किन्तु वस्तुतः निर्गुण महादेव के इस सुन्दर स्तोत्र को सर्व गन्धर्वगणों में श्रेष्ठ पुष्पदन्त नामक गन्धर्व ने बड़े सुन्दर छन्दों में रचा है।

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतर-धनायुः-पुत्रवान् कीर्तिमांश्च॥ ३४॥

जो मनुष्य चित्त को पवित्र रख कर परम भक्ति के साथ शिव के परम पावन इस स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करता है वह इस लोक में विपुल धन-सम्पदा और दीर्घायु को पा कर पुत्रवान, कीर्तिवान तथा शिवलोक में रुद्र के समान होता है।

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं योगयागादिकाः क्रियाः।
महिम्नः स्तव-पाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ३५॥

दीक्षा लेना, दान देना, तप करना, तीर्थ और योग-यज्ञ आदि सकल क्रियाएँ, हे शंकर! आपके महिम्नः स्तोत्र के पाठ की सोलहवीं कला के योग्य भी नहीं हो सकतीं।

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम्।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वर-वर्णनम्॥ ३६॥

पुष्पदन्त गन्धर्व के द्वारा रचा गया पवित्र, अनुपम, मनोहर, मंगलमय, ईश्वरवर्णनयुक्त यह स्तोत्र समाप्त हुआ।

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्॥ ३७॥

महेश्वर से बढ़ कर कोई देव नहीं है, महिम्नः स्तोत्र से बढ़ कर अन्य कोई स्तुति नहीं है, प्रणव मन्त्र [ॐ] से बढ़ कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं है और गुरु से श्रेष्ठ कोई तत्त्व नहीं है।

कुसुमदशन-नामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशु-शशधरमौलेर्देवदेवस्य दासः।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः॥ ३८॥

पुष्पदन्त नाम का गन्धर्वों का एक राजा सिर पर बालचन्द्र को धारण करनेवाले देवाधिदेव महादेव का एक भक्त था, वह शिव के कोप से अपनी महिमा खो बैठा, तब उसने उन्हें प्रसन्न करने के लिए इस अतिशय दिव्य शिवमहिमा के स्तोत्र की रचना की, ऐसा सुना जाता है।

सुरवर-मुनि-पूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम्॥ ३९॥

बड़े-बड़े देव और मुनियों का जिसमें पुण्यभाव है, स्वर्ग एवं मोक्ष का मुख्य कारण, कभी निष्फल न जानेवाला, पुष्पदन्त द्वारा रचित इस स्तोत्र का कोई मनुष्य यदि हाथ जोड़ कर, शिव में अनन्य चित्त रख कर पाठ करता है, तो किन्नरों द्वारा सत्कार पाता हुआ शिव के पास पहुँच जाता है।

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः॥ ४० ॥

श्रीपुष्पदन्त के मुखकमल से निकले हुए, सब प्रकार के पापों को हरनेवाले, भगवान शिव को सबसे अधिक प्रिय लगनेवाले और समानरूप से सबका हित करनेवाले इस स्तोत्र को कण्ठस्थ करके पाठ करते रहने पर पशुपति शंकर भगवान अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः॥ ४१ ॥

पुष्पदन्त द्वारा यह वाङ्मयी अर्थात् शब्दमयी पूजा भगवान शंकर के चरणों में अर्पित की गयी। हे देवाधिदेव, हे सदाशिव महादेव! आप मुझ पर प्रसन्न हों।

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत्।
तत् सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर॥ ४२ ॥

हे देव, जो कोई अक्षर अथवा शब्द अशुद्ध हो गया हो, मात्रा छूट गयी हो, तो उन सबको क्षमा कीजिए, और हे प्रभो, आप सदा प्रसन्न रहें।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

परमात्मा पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है, पूर्ण से ही पूर्ण बन सकता है। पूर्ण में से पूर्ण ले लेने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

श्रीशिवमानसपूजा

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम्।
जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम्॥ १॥

हे देव! हे दया के सागर पशुपति महादेव! मैंने आपके लिए हीरे, माणिक, मोती आदि अनेक रत्नों से एक दिव्य सिंहासन कल्पित किया है। हे शिव, आपके लिए मैंने गंगा आदि हिमनदियों और हिमसरोवरों के जलों द्वारा स्नान का आयोजन किया है; दिव्य वस्त्र बनाये हैं; अनेक रत्नों से सुशोभित अलंकार हैं; कस्तूरी की सुगन्ध से युक्त चन्दन का अंग-लेप तैयार किया है; चमेली, चम्पा, बेल-पत्र, अन्य पुष्प एवं सुवासित धूप द्वारा पूजन-सामग्री की रचना की है; फिर मैं अपने हृदयरूपी अथवा हृदय द्वारा कल्पित दीपक को आपके सामने जलाता हूँ। हे सर्वान्तर्यामी महादेव! आप मेरी इस पूजा को स्वीकार कीजिए।

सौवर्णे नवरत्न-खण्डरचिते पात्रे घृतं पायसं
भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं पानकम्।
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्ज्वलं
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो स्वीकुरु॥ २॥

मैंने सुवर्ण के नवरत्न-जड़ित विविध पात्रों में आपके लिए घी, क्षीरान्न, पाँच प्रकार के दूध-दहीयुक्त पदार्थ भोजन के लिए रखे हैं, केले आदि फल भी हैं। भोजन में अनेक प्रकार के शाक अलग-

अलग पात्रों में मैंने रखे हैं; शुद्ध, निर्मल, सुस्वादु जल आपके पीने के लिए लाया हूँ। हे प्रभो, मैंने आपके लिए भक्तिपूर्ण मन से दिव्य गन्धों से युक्त एक पान बनाया है, आप इसे स्वीकार कीजिए।

छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलं
वीणाभेरिमृदङ्गकाहलकला गीतं च नृत्यं तथा।
साष्टाङ्गं प्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा ह्येतत्समस्तं मया
सङ्कल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो॥ ३॥

हे प्रभो, मैं आपको छत्र समर्पित करता हूँ और दो चँवरों से बने पंखे को आप पर झुलाता हूँ। मैं आपके लिए एक अत्यन्त पवित्र, स्वच्छ दर्पण लाया हूँ। मैंने आपके लिए वीणा, भेरी, मृदंग, करताल, मँजीरों की दिव्य ध्वनियों से युक्त गीत और नृत्य का आयोजन किया है। मैं आपको साष्टांग प्रणाम करता हूँ और अनेक दिव्य स्तोत्रों से आपका गुणगान करता हूँ। हे विश्वरूप परशिव, मेरी यह समस्त पूजा मानसिक संकल्प द्वारा रची गयी है। हे प्रभो, आप इसे ग्रहण कीजिए।

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधि-स्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥ ४॥

हे शम्भो! हे सर्वसाक्षी प्रभो, आप ही मेरे आत्मा हैं, पार्वती मेरी बुद्धि हैं, आपके साथ विचरण करनेवाले गण आदि मेरे प्राण हैं, मेरा शरीर आपके निवास का मन्दिर है। मैं जिन-जिन इन्द्रियों से जिन-जिन विषयों का उपयोग करता हूँ, वह सब आपकी पूजा-रचना है। मेरी नींद समाधि-अवस्था है। मैं पैरों से जहाँ कहीं भी चलता-फिरता

हूँ वह आपकी परिक्रमा ही है। मेरे मुख से निकलनेवाली वाणी आपकी स्तुतियाँ हैं। हे महादेव, मैं जो-जो भी कर्म करता हूँ, वह सब कुछ, वे सब क्रियाएँ आपकी आराधना हैं।

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥ ५॥

हे करुणा के सागर! हे महादेव! हे सर्व देवाधिदेव! फिर भी अगर मुझसे, मेरे हाथों से, पैरों से, वाणी से, शरीर से, कर्म से, कानों से, नेत्रों से अथवा मानसिक रूप से जानते हुए या अनजान में कोई अपराध हो गया हो या होनेवाला हो तो हे प्रभो, ऐसे मेरे किसी भी अपराध को क्षमा करना। हे सदाशिव प्रभो, आप करुणा के सागर हैं, आपकी जय हो, जय हो।

गुरुदेव हमारा प्यारा

गुरुदेव हमारा प्यारा, है जीवन को आधार॥

गुरुदेव की है अपार शक्ति, जीवन को है मिलती स्फूर्ति।
मिटे मैल सब मन के पार, है जीवन को आधार।
गुरुदेव हमारा प्यारा, है जीवन को आधार॥

उनको अपना जीवन जानो, तन-मन-धन सब उनको मानो।
वो ही लगावे पार, है जीवन को आधार।
गुरुदेव हमारा प्यारा, है जीवन को आधार॥

नित्यानन्द शरण जो जावे, बोध उजाला सो ही पावे।
मुक्त होत है निर्धार, है जीवन को आधार।
गुरुदेव हमारा प्यारा, है जीवन को आधार॥

मुक्तानन्द कहे सब आओ, श्रीगुरुदेव नाम नित गाओ [२]
हो भवभय से पार, है जीवन को आधार।
गुरुदेव हमारा प्यारा, है जीवन को आधार॥

ज्योत से ज्योत जगाओ

ज्योत से ज्योत जगाओ, सद्गुरु ज्योत से ज्योत जगाओ;
मेरा अन्तर तिमिर मिटाओ, सद्गुरु ज्योत से ज्योत जगाओ।

हे योगेश्वर, हे ज्ञानेश्वर, हे योगेश्वर, हे ज्ञानेश्वर,
हे सर्वेश्वर, हे परमेश्वर, हे सर्वेश्वर, हे परमेश्वर,
निज कृपा बरसाओ। सद्गुरु ज्योत से ज्योत जगाओ॥

हम बालक तेरे द्वार पे आये, हम बालक तेरे द्वार पे आये।
मंगल दरस दिखाओ। सद्गुरु ज्योत से ज्योत जगाओ॥

शीश झुकाय करें तेरी आरती, शीश झुकाय करें तेरी आरती।
प्रेमसुधा बरसाओ। सद्गुरु ज्योत से ज्योत जगाओ॥

अन्तर में युग-युग से सोई, अन्तर में युग-युग से सोई।
चितिशक्ति को जगाओ। सद्गुरु ज्योत से ज्योत जगाओ॥

साँची ज्योत जगे हृदय में, साँची ज्योत जगे हृदय में।
सोऽहं नाद जगाओ। सद्गुरु ज्योत से ज्योत जगाओ॥

जीवन मुक्तानन्द अविनाशी, जीवन मुक्तानन्द अविनाशी।
चरनन शरन लगाओ। सद्गुरु ज्योत से ज्योत जगाओ॥

शिव आरती

ॐ जय गङ्गाधर हर, शिव जय गिरिजाधीश,
शिव जय गौरीनाथ।
त्वं मां पालय नित्यं, त्वं मां पालय शम्भो,
कृपया जगदीश। ॐ हर हर हर महादेव॥

श्री गंगाजी को धारण करनेवाले भगवान हर [शिव] की जय! गिरिजा के स्वामी की जय! गौरी के पति भगवान शिव की जय! हे शम्भो मेरा पालन-पोषण कीजिए। हे जगदीश! कृपा करके मेरी सदैव रक्षा कीजिए।

कैलासे गिरिशिखरे कल्पद्रुमविपिने,
शिव कल्पद्रुमविपिने।
गुञ्जति मधुकर पुञ्जे, गुञ्जति मधुकर पुञ्जे, कुञ्जवने गहने।
कोकिल कूजति खेलति हंसावलिललिता,
शिव हंसावलिललिता। रचयति कलाकलापं,
रचयति कलाकलापं, नृत्यति मुदसहिता।
ॐ हर हर हर महादेव॥ १॥

कैलास पर्वत के ऊपरवाले वनों में कल्पवृक्षों के वन हैं। वहाँ की लताओं और कुंजों में सुन्दर भ्रमरों की मधुर गुंजार होती रहती है। वह स्थल कोयल की कुहुक और हंसों का क्रीड़ा-स्थल है, वहाँ मोर अपने सुन्दर पंखों को फैला कर नृत्य करने में मस्त रहते हैं।

तस्मिँल्ललितसुदेशे शालामणिरचिता,
शिव शालामणिरचिता।

तन्मध्ये हरनिकटे, तन्मध्ये हरनिकटे, गौरीमुदसहिता।
क्रीड़ां रचयति भूषां रञ्जितनिजमीशं,
शिव रञ्जितनिजमीशं। इन्द्रादिक सुरसेवित,
ब्रह्मादिक सुरसेवित, प्रणमति ते शीर्षम्।
ॐ हर हर हर महादेव॥ २॥

उस सुन्दर और वैभवशाली स्थल पर एक बड़ा सुन्दर, रत्नों से जड़ा हुआ महल है जहाँ गौरी आनन्द में मस्त हो कर भगवान शिव के चारों ओर खेलती, नृत्य करती हैं और आनन्द में डूब कर भगवान शिव को प्रसन्न करती हैं व स्वयं उन्हीं के भाव में लीन हो जाती हैं। इन्द्र और ब्रह्मा आदि–जिनकी अन्य देवता पूजा करते हैं–वे स्वयं सिर झुका कर आपको नमन करते हैं।

विबुधवधूर्बहु नृत्यति हृदये मुदसहिता,
शिव हृदये मुदसहिता। किन्नरगानं कुरुते,
किन्नरगानं कुरुते, सप्तस्वरसहिता।
धिनकत थै थै धिनकत मृदङ्ग वादयते,
शिव मृदङ्ग वादयते। क्वण, क्वण ललिता वेणुर्,
क्वण, क्वण ललिता वेणूर्, मधुरं नादयते।
ॐ हर हर हर महादेव॥ ३॥

देव-पत्नियों के हृदय आनन्द से भरे हैं और वे झूम-झूम कर नृत्य करती हैं। किन्नरगण सप्त स्वरों में गान कर रहे हैं। मृदंग और वीणा का मधुर संगीत गुंजायमान है। मधुर-मधुर बाँसुरी बज रही है।

रुणु रुणु चरणे रचयति नूपुरमुज्ज्वलितं,
शिव नूपुरमुज्ज्वलितम्। चक्रावर्ते भ्रमयति,

चक्रावर्ते भ्रमयति, कुरुते तां धिक् ताम्।
तां तां लुपचुप तालं नादयते, शिव तालं नादयते।
अङ्गुष्ठाङ्गुलिनादं, अङ्गुष्ठाङ्गुलिनादं, लास्यकतां कुरुते।
ॐ हर हर हर महादेव॥ ४॥

चमकती हुई पायलों के छोटे-छोटे घुँघरू अपनी मधुर रुन-झुन की ध्वनि कर रहे हैं। कुमारिकाएँ गोल-गोल, घूम-घूम कर गीत गाते हुए नृत्य कर रही हैं और उनकी करताल तथा चुटकियों के स्वर अति मधुर लग रहे हैं।

कर्पूरद्युतिगौरं पञ्चाननसहितं, शिव पञ्चाननसहितम्।
त्रिनयनशशिधरमौलिः, त्रिनयनशशिधरमौलिः,
विषधरकण्ठयुतम्। सुन्दरजटाकलापं पावकयुतभालं,
शिव पावकयुतभालम्। डमरुत्रिशूलपिनाकं,
डमरुत्रिशूलपिनाकं, करधृतनृकपालम्।
ॐ हर हर हर महादेव॥ ५॥

कर्पूर की श्वेत आभा और चमकीले वैभववाले पंचमुखी शिव विराजमान हैं। तीन नयनोंवाले, माथे पर जिनके अर्धचन्द्र विराजमान है, जो गले में सर्पों की माला धारण करते हैं, सुन्दर जटाओंवाले शिव जिनके भाल पर अग्नि धधक रही है, ये शिव हाथ में डमरु, त्रिशूल और पिनाक नामक धनुष और एक हाथ में नरकपाल लिए हुए हैं।

शङ्खनिनादं कृत्वा झल्लरि नादयते,
शिव झल्लरि नादयते। नीराजयते ब्रह्मा,
नीराजयते विष्णुर्वेदऋचां पठते।
इति मृदुचरणसरोजं हृत्कमले धृत्वा,

शिव हृत्कमले धृत्वा। अवलोकयति महेशं,
शिवलोकयति सुरेशम्, ईशमभिनत्वा।
ॐ हर हर हर महादेव॥ ६॥

शंखनाद और घण्टे-घड़ियाल के मधुर नाद सुनाई पड़ते हैं, ब्रह्मा और विष्णु वेदमन्त्रों का पाठ कर रहे हैं और आरती कर रहे हैं। अपने हृदय में भगवान के चरण-कमलों को स्थापित करके, भगवान को, कल्याणकारी शिव को सभी देवता निहार रहे हैं।

रुण्डै रचयति मालां पन्नगमुपवीतं,
शिव पन्नगमुपवीतम्। वामविभागे गिरिजा,
वामविभागे गौरी, रूपमति ललितम्।
सुन्दरसकलशरीरे कृतभस्माभरणं,
शिव कृतभस्माभरणम्।
इति वृषभध्वजरूपं, हरशिवशङ्कररूपं, तापत्रयहरणम्।
ॐ हर हर हर महादेव॥ ७॥

नरकपालों की माला धारण किये, साँपों को जनेऊ बना कर पहननेवाले शिव के वामांग में सुन्दर गौरी विराजमान हैं, ऐसे शिव का शरीर बड़ा सुन्दर और भस्म लगा हुआ है। उनका नन्दी [बैल] ध्वज की तरह खड़ा है। आप तीनों तापों का नाश करनेवाले करुणा के सागर, कल्याण करनेवाले हैं।

ध्यानं आरती समये हृदये इति कृत्वा,
शिव हृदये इति कृत्वा।
रामं त्रिजटानाथम्, रामं त्रिजटानाथम्, ईशमभिनत्वा।
संगीतमेवं प्रतिदिनपठनं यः कुरुते, शिव पठनं यः कुरुते।

शिवसायुज्यं गच्छति, हरसायुज्यं गच्छति
भक्त्या यः श्रृणुते।
ॐ हर हर हर महादेव॥ ८॥

हम आपका ध्यान करते हैं। आप भक्तों के हृदयों में विलास करते हैं और त्रिजटा के भगवान हैं। जो इस आरती का प्रतिदिन संगीतमय पाठ करता है उसे शिवजी का सान्निध्य सहज ही प्राप्त हो जाता है।

ॐ जय गङ्गाधर हर, शिव जय गिरिजाधीश,
शिव जय गौरीनाथ, त्वं मां पालय नित्यं,
त्वं मां पालय शम्भो, कृपया जगदीश।
ॐ हर हर हर महादेव॥

श्री गंगाजी को धारण करनेवाले भगवान हर [शिव] की जय! गिरिजा के स्वामी की जय! गौरी के पति भगवान शिव की जय! हे शम्भो मेरा पालन-पोषण कीजिए। हे जगदीश! कृपा करके मेरी सदैव रक्षा कीजिए।

भजन एवं मन्त्र

१. मुक्तानन्द महान, जय सद्गुरु भगवान।
जय सद्गुरु भगवान, जय सद्गुरु भगवान॥

२. मेरे बाबा मुक्तानन्द, मेरे बाबा मुक्तानन्द।
मेरे बाबा मुक्तानन्द, मेरे बाबा मुक्तानन्द।
ॐ मुक्तानन्द, ॐ मुक्तानन्द,
ॐ मुक्तानन्द, मेरे बाबा मुक्तानन्द।

३. जय जय मुक्तानन्द, मुक्तानन्द जय जय।
गणेशपुरी निवासी, जगद्गुरु मुक्तानन्द॥

४. ॐ गुरु ॐ गुरु ॐ गुरुदेव।
जय गुरु जय गुरु जय गुरुदेव॥

५. ॐ गुरु जय गुरु सच्चिदानन्द गुरु।
सच्चिदानन्द गुरु मुक्तानन्द सद्गुरु॥

६. ॐ भगवान, ॐ भगवान।
ॐ भगवान, मुक्तानन्द भगवान॥

७. हे भगवान, हे भगवान।
जय गुरु नित्यानन्द तुम हो महान।

जय गुरु मुक्तानन्द तुम हो महान।
शरण आये हम तुम्हारी, रक्षा करो भगवान॥

८. ॐ नमो भगवते मुक्तानन्दाय।
ॐ नमो भगवते मुक्तानन्दाय।

९. श्रीगुरुदेव शरणम्, श्रीगुरुदेव शरणम्,
श्रीगुरुदेव शरणम्। नित्यानन्दं ब्रह्मानन्दं,
सकलानन्दं परमानन्दम्।
नित्यानन्दं चरणम् शरणम्,
मुक्तानन्दं चरणम् शरणम्॥

१०. ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय।
ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय॥

११. शिवाय नमः ॐ शिवाय नमः ॐ।
शिवाय नमः ॐ नमः शिवाय॥
ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय॥

१२. नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय,
पार्वतीवल्लभ नमः शिवाय।
पार्वतीवल्लभ नमः शिवाय,
पार्वतीवल्लभ नमः शिवाय॥

१३. ॐ शिव ॐ शिव परात्परा शिव,
ओंकारा शिव तव शरणम्।

नमामि शङ्कर भवानि शङ्कर,
उमा-महेश्वर तव शरणम् ॥

१४. साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव,
साम्ब सदाशिव हर शम्भो।
हे गिरिजावर, हे गिरिजावर,
हे गिरिजावर हर शम्भो।
हे करुणाकर, हे करुणाकर,
हे करुणाकर, हर शम्भो।
हे मृत्युञ्जय सच्चित्सुखमय,
हे करुणामय हर शम्भो ॥

१५. जय जय शिव शम्भो। जय जय शिव शम्भो।
महादेव शम्भो। महादेव शम्भो ॥

१६. श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।
हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

१७. श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु मुक्तानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्द ॥
हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्द।
हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्द ॥

१८. कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाला।
कृष्ण मुरली मनोहर नन्दलाला ॥

१९. गोविन्द जय जय गोपाल जय जय।
राधा रमण हरि गोविन्द जय जय॥

२०. देवकीनन्दन गोपाला।
गोपाला, गोपाला, देवकीनन्दन गोपाला।
देवकीनन्दन गोपाला, देवकीनन्दन गोपाला॥

२१. जय जय रामकृष्ण हरि, राजा रामकृष्ण हरि॥

२२. श्रीराम जय राम जय जय राम।

२३. रघुपति राघव राजाराम, पतितपावन सीताराम।
पतितपावन सीताराम, पतितपावन सीताराम।
श्रीराम जयराम जय जय राम,
श्रीराम जयराम, जय जय राम।

२४. राम राघव, राम राघव, राम राघव रक्षमाम्।
कृष्ण केशव, कृष्ण केशव, कृष्ण केशव पाहिमाम्॥

२५. हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

२६. हरि हरि बोल, हरि हरि बोल।
मुकुन्द माधव केशव बोल॥
मुकुन्द माधव केशव बोल।
नरहरि विठ्ठल नारायण बोल॥
नित्यानन्द मुक्तानन्द परमानन्द बोल।

ॐ गुरु जय गुरु जय जय गुरु बोल ॥
पांडुरंग श्रीरंग आत्मारंग बोल ।
नीलकण्ठ मेघश्याम हरि हर बोल ॥
ज्ञानदेव तुकाराम नामदेव बोल ।
झिप्रुअण्णा साईंनाथ नित्यानन्द बोल ॥
कान्होपात्रा मुक्ताबाई जनाबाई बोल ।
मीराबाई जगदम्बे सखुबाई बोल ॥
मीनाक्षी अन्नपूर्णा कामाक्षी बोल ।
चामुण्डि महादेवी कुण्डलिनी बोल ॥

२७. रामकृष्ण हरी, मुकुन्द मुरारी ।
पांडुरंग पांडुरंग, पांडुरंग हरी ॥

२८. विठ्ठले विठ्ठले विठ्ठले विठ्ठले ।
जय जय विठ्ठले, जय जय विठ्ठले ॥

२९. जय जय विठ्ठल, जय हरी विठ्ठल ।
जय जय विठ्ठल, जय हरी विठ्ठल ॥

३०. विठ्ठले विठ्ठले पांडुरंग विठ्ठले ।
पांडुरंग विठ्ठले पंढरीनाथ विठ्ठले ॥

३१. काली दुर्गे नमो नमः । काली दुर्गे नमो नमः ॥

३२ नारायण नारायण जय गोविन्द हरे ।
नारायण नारायण जय गोपाल हरे ॥

३३. हे गोविन्द हे गोपाल।
नारायण, नारायण, नारायण राखो शरण॥

३४. नित्यानन्दं, ब्रह्मानन्दं, ब्रह्मस्वरूपं नीलवर्णम्।
त्रिलोकनाथं श्रीगुरुदेवं, ॐ नमो नित्यानन्दं॥
ॐ नमो नित्यानन्दं। ॐ नमो नित्यानन्दं॥

३५. ज्या ज्या ठिकाणी मन जाय माझे
त्या त्या ठिकाणी निजरूप तुझे।
मी ठेवितो मस्तक ज्या ठिकाणी
तेथे तुझे सद्गुरु पाय दोन्ही॥

द्वितीय खण्ड

चन्द्रशेखराष्टकम्

चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर पाहि माम्।
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम्॥ १ ॥

हे चन्द्रशेखर! [अपने सिर पर चन्द्र को धारण करनेवाले] हे भगवान शिव! आप मेरी रक्षा करें। हे चन्द्रशेखर शिव मेरी रक्षा करें।

रत्नसानुशरासनं रजताद्रिशृङ्गनिकेतनं
सिञ्जिनीकृतपन्नगेश्वरमच्युताननसायकम्।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदिवालयैरभिवन्दितं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ २ ॥

जिनका रत्नजड़ित पर्वत शिखर धनुष है, रजत के समान चमचमाता हिमालय गिरि का शिखर जिनका भवन है, जो झंकृत सर्पों के अधीश्वर हैं अर्थात् फुँफकारयुक्त सर्प जिनके आभूषण हैं, अच्युत [भगवान विष्णु] का मुखारविन्द ही जिनका वाण है, त्रिपुरासुर के तीनों नगरों को शीघ्रतापूर्वक जिन्होंने भस्म कर दिया था, स्वर्ग के निवासी देवता जिनकी वन्दना करते हैं, ऐसे चन्द्रशेखर, भगवान शिव का मैं आश्रय ले रहा हूँ तो मेरा यमराज क्या बिगाड़ सकेंगे?

पञ्चपादपपुष्पगन्धपदाम्बुजद्वयशोभितं
भाललोचन-जातपावकदग्धमन्मथविग्रहम्।
भस्मदिग्धकलेवरं भवनाशनं भवमव्ययं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥ ३ ॥

पाँच वृक्षों के फूलों की गन्ध से दोनों चरण-कमल शोभायमान हैं, ललाट स्थित नेत्र से उत्पन्न अग्नि के द्वारा जिन्होंने कामदेव के शरीर को भस्मसात कर दिया, जिनकी देह भस्म से लिप्त है, जो संसार का नाश करनेवाले हैं, जो अविनश्वर शिव हैं, ऐसे चन्द्रशेखर, भगवान शिव का मैं आश्रय ले रहा हूँ तो मेरा यमराज क्या बिगाड़ सकेंगे?

मत्तवारणमुख्य-चर्मकृतोत्तरीयमनोहरं
पङ्कजाननपद्मलोचनपूजिताङ्घ्रिसरोरुहम्।
देवसिन्धुतरङ्गसीकरसिक्तशुभ्रजटाधरं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥४॥

मतवाले गजराज के चमड़े से बने दुकूल [दुपट्टे] को धारण करने से जो मनोहर लग रहे हैं, पंकजानन [कमल के समान मुखवाली] लक्ष्मी तथा पद्मलोचन [कमल के समान नेत्रवाले], भगवान विष्णु ने जिनके चरणों की पूजा की थी जो देवनदी गंगाजी की तरंगों से उठे जलकणों के द्वारा अभिसिंचित, पवित्र जटाओं को धारण कर रहे हैं, ऐसे चन्द्रशेखर, भगवान शिव का मैं आश्रय ले रहा हूँ तो मेरा यमराज क्या बिगाड़ सकेंगे?

यक्षराजसखं भगाक्षहरं भुजङ्गविभूषणं
शैलराजसुतापरिष्कृतचारुवामकलेवरम्।
क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥५॥

जो यक्षराज कुबेर के मित्र हैं, इन्द्र के सहस्र नेत्रों को दूर करनेवाले हैं, जिन्होंने भुजंगों को आभूषण के रूप में धारण कर रखा है, शैलराज हिमालय की कन्या पार्वती से जिनका वाम भाग सुशोभित

है, गरलपान करने के कारण जिनका कण्ठ नील हो गया है, जिन्होंने परशु और मृगचर्म को धारण कर रखा है, ऐसे चन्द्रशेखर, भगवान शिव का मैं आश्रय ले रहा हूँ तो मेरा यमराज क्या बिगाड़ सकेंगे?

कुण्डलीकृतकुण्डलेश्वरकुण्डलं वृषवाहनं
नारदादिमुनीश्वरस्तुतवैभवं भुवनेश्वरम्।
अन्धकान्तकमाश्रितामरपादपं शमनान्तकं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥६॥

सर्पों को जिन्होंने आभूषण के रूप में धारण कर रखा है, वृषभ को वाहन बनाया है, जिनके वैभव की स्तुति नारद इत्यादि मुनिश्रेष्ठ करते हैं, जो भुवनों के ईश्वर हैं, जिन्होंने अन्धक नामक असुर का विनाश किया, देववृक्ष, पारिजात ने जिनका आश्रय ले रखा है, जो मृत्यु के विनाश की भी सामर्थ्य रखते हैं, ऐसे चन्द्रशेखर, भगवान शिव का मैं आश्रय ले रहा हूँ तो मेरा यमराज क्या बिगाड़ सकेंगे?

भेषजं भवरोगिणामखिलापदामहारिणं
दक्षयज्ञविनाशनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम्।
भुक्ति-मुक्ति-फलप्रदं सकलाघसंघनिबर्हणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥७॥

जो संसार से पीड़ित रोगियों के लिए भेषज [औषध] हैं, जो सम्पूर्ण आपत्तियों का हरण करनेवाले हैं, जिन्होंने प्रजापति दक्ष के यज्ञ का विध्वंस किया था, जो सत्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों के साक्षात् विग्रह हैं और त्रिनेत्रधारी हैं, जो भोग और मोक्ष के फल को प्रदान करते हैं, सम्पूर्ण पापों के समूह का संहार करते हैं, ऐसे चन्द्रशेखर, भगवान शिव का मैं आश्रय ले रहा हूँ तो मेरा यमराज क्या बिगाड़ सकेंगे?

भक्तवत्सलमर्चितं निधिमक्षयं हरिदम्बरं
सर्व-भूत-पतिं परात्परमप्रमेयमनुत्तमम्।
सोमवारिनभोहुताशनसोमपानिलखाकृतिं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ८ ॥

जो भक्तों पर कृपा बरसानेवाले हैं, पूजित अक्षय निधि हैं, दिशाओं को ही जिन्होंने वस्त्र के रूप में धारण कर रखा है, जो सम्पूर्ण प्राणियों के स्वामी हैं, जो परात्पर परब्रह्म हैं, जो प्रमाणगम्य नहीं हैं, जिनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है [अर्थात् जो सर्वोत्तम् हैं], चन्द्रमा, जल, आकाश, अग्नि, सूर्य, वायु, पृथ्वी और यमराज जिनके ये आठ रूप हैं, इसलिए अष्टमूर्ति हैं, ऐसे चन्द्रशेखर, भगवान शिव का मैं आश्रय ले रहा हूँ तो मेरा यमराज क्या बिगाड़ सकेंगे?

विश्व-सृष्टि-विधायिनं पुनरेव पालनतत्परं
संहरन्तमपि प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम्।
क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथसमन्वितं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ९ ॥

जो विश्व की सृष्टि का विधान करनेवाले हैं, उसके पश्चात् जो उस सृष्टि के पालन-पोषण में परायण हैं और फिर विश्व के प्रपंच का संहार भी कर रहे हैं, सम्पूर्ण लोकों के निवासस्थान हैं और उन सबको दिन-रात नाच नचाते रहते हैं, जो भूत-प्रेत, प्रथम इत्यादि गणों के स्वामियों के समूह से घिरे रहते हैं, ऐसे चन्द्रशेखर, भगवान शिव का मैं आश्रय ले रहा हूँ तो मेरा यमराज क्या बिगाड़ सकेंगे?

मृत्युभीतमृकण्डुसूनुकृतस्तवं शिवसन्निधौ
यत्र कुत्र च यः पठेन्नहि तस्य मृत्युभयं भवेत्।

पूर्णमायुररोगितामखिलार्थसम्पदमादरं
चन्द्रशेखर एव तस्य ददाति मुक्तिमयत्नतः ॥ १० ॥

मृत्यु से डरे हुए मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय ऋषि ने भगवान शिव के सान्निध्य में इस चन्द्रशेखराष्टक का पाठ किया था। जो व्यक्ति इस स्तोत्र का, जहाँ कहीं भी पाठ करेगा उसे मृत्युभय नहीं होगा। चन्द्रशेखर, भगवान शिव, उस व्यक्ति को सहज रूप से, पूर्ण आयु, आरोग्य, सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ, आदर और मुक्ति प्रदान करते हैं।

द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम्

मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम्।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम्॥ १ ॥

ओ मूढ़, अधिक धन पाने की तृष्णा को छोड़ दे। सद्बुद्धि जगा और मन को तृष्णाहीन बना दे। अपने कर्मों के फलस्वरूप जो धन तुझे मिलता है, उसी में सन्तोष व प्रसन्नता पा ले।

अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता नीतिः॥ २ ॥

यह स्मरण रख धन अनर्थ करनेवाला है; उसमें लेशमात्र सुख नहीं है। एक धनी व्यक्ति अपने पुत्र से भी डरता है। सर्वत्र यही उसका भाग्य है।

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः॥ ३ ॥

कौन तेरी पत्नी है, कौन तेरा पुत्र है? यह संसार बहुत ही विचित्र है! तू कौन है? तू किसका है? तू कहाँ से आया है? हे भाई, इन बातों पर मनन कर।

मा कुरु जनधनयौवनगर्वं हरति निमेषात्कालः सर्वम्।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा॥४ ॥

अपने यौवन, धन व मित्रों पर गर्व मत कर। पलक झपकते काल इन्हें ग्रस लेता है। इस संसार की माया को छोड़ दे। आत्मज्ञान प्राप्त करके ब्रह्मपद प्राप्त कर।

कामं क्रोधं मोहं लोभं त्यक्त्वात्मानं भावय कोऽहम्।
आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः ॥५॥

काम, क्रोध, मोह, लोभ को त्याग कर अपने सच्चे स्वरूप का चिन्तन कर। जो आत्मज्ञान-हीन मूढ़ हैं वे महानरक को प्राप्त हो कर दुःख झेलते हैं।

सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः ॥६॥

वृक्ष की छाया या मन्दिर को अपना घर बना ले, पृथ्वी को सेज। व्याघ्र चर्म के वस्त्र पहन। सभी वस्तुओं के संग्रह और भोग को त्याग दे। यदि मन में ऐसा वैराग्य आ जाए तो किस सुख की कमी है?

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम् ॥७॥

शत्रु हो, मित्र हो, पुत्र हो, बन्धु हो, युद्ध हो, शान्त हो, सबसे अनासक्त रह। यदि शीघ्र ही विष्णुत्त्व को प्राप्त करना है तो सर्वत्र, सर्वदा ही मन में समत्व भाव रख।

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि सर्वसहिष्णुः।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदज्ञानम् ॥८॥

तुझमें, मुझमें, अन्य सभी जनों में केवल भगवान का ही निवास है। अतः सहिष्णु बन और व्यर्थ क्रोध मत कर। सबको अपने ही समान देख और भेद-भाव को भुला दे।

प्राणायामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम्।
जाप्यसमेतसमाधिविधानं कुर्ववधानं महदवधानम्॥ ९॥

प्राणायाम व प्रत्याहार का अभ्यास कर। नित्य क्या है और अनित्य क्या है, इसका मनन-चिन्तन कर। ईश्वर के पवित्र नाम का जप करते हुए पूर्ण एकाग्रता की स्थिति प्राप्त कर। इन सबकी ओर ध्यान देना बहुत बड़ी पूजा है।

नलिनीदलगतसलिलं तरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम्।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम्॥ १०॥

यह मानव-जीवन ऐसा क्षणिक है जैसे कमल-दल पर पानी की बूँद। जीवन-भर लोग रोग, शोक व अहंकार से ग्रस्त हैं-यह स्मरण रख।

का तेऽष्टादशदेशे चिन्ता वातुल तव किं नास्ति नियन्ता।
यस्त्वां हरते सुदृढनिबद्धं बोधयति प्रभवादिविरुद्धम्॥ ११॥

तूने क्यों अनेक चिन्ताएँ पाल रखी हैं? क्यों इतना व्यथित है, क्या तेरा कोई नियन्ता नहीं है जो तेरे कठिन बन्धनों को काट दे और जन्मादि चक्र से तुझे उबार ले?

गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः संसारादचिराद्भवमुक्तः।
सेन्द्रिय-मानसनियमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम्॥ १२॥

जो भक्त गुरु-चरणों में निवेदित है वह इस असार संसार के बन्धन से मुक्त है। वह अपने मन व इन्द्रियों का निरोध करके हृदयस्थ परमात्मा के दर्शन करता है।

द्वादशपञ्जरिकामय एषः शिष्याणां कथितो ह्युपदेशः।
येषां चित्ते नैव विवेकस्ते पच्यन्ते नरकमनेकम्॥१३॥

शिष्यों को उपदेश देने के लिए मैंने [शंकराचार्य] इस द्वादशपञ्जरिका की रचना की। जिनके चित्त में विवेक नहीं है उन्हें नरक के अनेक दुःख प्राप्त होते हैं।

चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्

दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ १ ॥

रात और दिन, प्रातः और सन्ध्या, शीत ऋतु और वसन्त—ये बार-बार आते ही रहते हैं। समय बीतता जाता है, आयु क्षीण होती जाती है फिर भी इच्छा का पवन उसका पीछा नहीं छोड़ता।॥ध्रुवपदम्॥

सम्प्राप्ते सन्निहिते काले नहि नहि रक्षति डुकृञ्करणे।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥

ओ मूढ़ गोविन्द को भज, गोविन्द को भज, गोविन्द को भज। मृत्यु के निकट आने पर व्याकरण के सूत्र तेरा त्राण नहीं कर पायेंगे।॥ध्रुवपदम्॥

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानुः रात्रौ चिबुक-समर्पितजानुः।
करतलभिक्षः तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ २ ॥

सामने अग्नि या पीठ पीछे सूर्य होता है; रात्रि के समय घुटनों पर ठोड़ी टिकाये बैठा रहता है। हाथों को फैला कर भिक्षा माँगता है। पेड़ों के नीचे रहता है फिर भी इच्छा का फन्दा उसे नहीं छोड़ता।॥ध्रुवपदम्॥

यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः।
पश्चाद्धावति जर्जरदेहे वार्तां पृच्छति कोऽपि न गेहे
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ३ ॥

जब तक जीविका-उपार्जन की शक्ति रहती है तब तक उसके परिवार-जन उसमें आसक्ति रखते हैं। उसके बाद जर्जर देह ले कर लड़खड़ाता घूमता है और उसके घरवाले उसका समाचार भी नहीं लेते। ॥ध्रुवपदम्॥

जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेषः।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढ उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ४ ॥

सिर पर जटाएँ हों अथवा कटे या घुंघराले हुए बालोंवाला सिर हो, गेरुए रंग के कपड़ों में तरह-तरह का वेष धारण किये हुए ये मूर्ख देखते तो हैं पर सत्य को फिर भी नहीं देखते। केवल पेट भरने के लिए बहुरूपिया बने घूमते हैं। ॥ध्रुवपदम्॥

भगवद्गीता किंचिदधीता गङ्गाजललवकणिका पीता।
सकृदपि यस्य मुरारिसमर्चा तस्य यमः किं कुरुते चर्चाम्।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ५ ॥

उसने यदि भगवद्गीता को थोड़ा भी पढ़ा है, थोड़ा भी गंगाजल पिया है, कृष्ण की थोड़ी भी पूजा की है, तो यमराज उसके विषय में क्या कर सकते हैं? ॥ध्रुवपदम्॥

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम्।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ ६॥

जिसका शरीर गल गया है, बाल श्वेत हो गये हैं, मुँह के दाँत गिर गये हैं, ऐसा बूढ़ा लाठी के सहारे ही चल सकता है, फिर भी आशा का भोजन उसका पीछा नहीं छोड़ता।॥ध्रुवपदम्॥

बालस्तावत्क्रीडासक्त-स्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नस्तस्मिन् ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ ७॥

बचपन खेलने में बीता, यौवन नारी की आसक्ति में और बुढ़ापे में चिन्ताओं में घिर गया। पर कोई ब्रह्म का ध्यान नहीं करता। ॥ध्रुवपदम्॥

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।
इह संसारे बहुदुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ ८॥

बार-बार जन्म लेना, बार-बार मृत्यु को प्राप्त होना और फिर माता के पेट में शयन करना होता है। इस संसार-सागर को पार करना बहुत कठिन है। हे मुरारी, अपनी कृपा द्वारा मेरी रक्षा करें। ॥ ध्रुवपदम्॥

पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः।
पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम्।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ ९॥

एक रात और, एक दिन और, फिर एक पखवाड़ा, महीना, वर्षार्ध और एक वर्ष और आता है [इसी प्रकार समय बीतता जाता है]। फिर भी इच्छा का आवेश मनुष्य को नहीं छोड़ता। ॥ध्रुवपदम्॥

वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः।
नष्टे द्रव्ये कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ १०॥

जब यौवन चला गया तो कामविकार कहाँ गया? जब पानी ही सूख गया तो झील कैसी? जब धन नहीं रहा तो सगे-सम्बन्धी कहाँ हैं? जब सत्य का ज्ञान हो गया तो यह संसार कहाँ है? ॥ध्रुवपदम्॥

नारीस्तनभरनाभिनिवेशं मिथ्यामायामोहावेशम्।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय वारंवारम्।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ ११॥

नारी के स्पर्श का सुख मिथ्या माया से मोहित हुए लोगों का आवेश है। पुनः-पुनः मन में ऐसा चिन्तन करना चाहिए कि शरीर तो मांस-मज्जा आदि विकारों से भरा हुआ है। ॥ध्रुवपदम्॥

कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः।
इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ १२॥

तू कौन है? मैं कौन हूँ? मैं कहा से आया हूँ? कौन मेरी माता और कौन मेरा पिता है? इस प्रकार सोचते हुए कि इस संसार में कुछ सार नहीं है, इसका परित्याग कर देना चाहिए, क्योंकि यह केवल एक स्वप्न है। ॥ध्रुवपदम्॥

गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम्।
नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम्।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ १३॥

भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम गाते हुए निरन्तर श्रीविष्णु के रूप पर ध्यान स्थिर रखना चाहिए। मन को सज्जनों की संगति में लगाना चाहिए और दीन-हीन लोगों को धन का दान देना चाहिए। ॥ध्रुवपदम्॥

यावज्जीवो निवसति देहे कुशलं तावत्पृच्छति गेहे।
गतवति वायौ देहापाये भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ १४॥

परिवार के लोग तभी तक सुख-दुःख की पूछताछ करते हैं जब तक शरीर में प्राण हैं। ज्योंही प्राण शरीर को छोड़ता हैं, पत्नी भी उस शव से भय खाती है।॥ध्रुवपदम्॥

सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः।
यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चति पापाचरणम्।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ १५॥

बड़े सुख से सुन्दर स्त्री का उपयोग करते हैं किन्तु बाद में शरीर में रोग घर कर लेते हैं। यद्यपि इस संसार में केवल मृत्यु की शरण ही लेनी पड़ती है फिर भी लोग पाप का आचरण नहीं छोड़ते। ॥ध्रुवपदम्॥

रथ्याचर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः।
नाहं न त्वं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ १६॥

फेंके हुए वस्त्रों से गुँथा हुआ कन्था पहने एक संन्यासी उस पथ पर चलता है जो पाप और पुण्य दोनों के परे है। न तुम्हारा, न हमारा और न इस संसार का ही अस्तित्व है, फिर शोक किस कारण से हो? ॥ध्रुवपदम्॥

कुरुते गङ्गासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम्।
ज्ञानविहीने सर्वमनेन मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ १७॥

चाहे कोई वहाँ चला जाए जहाँ गंगा सागर में विलीन होती हैं, कितने ही व्रत रखें या दान करें तथापि बिना ज्ञान के सौ जन्मों तक मुक्ति नहीं मिल सकती।॥ध्रुवपदम्॥

श्रीअवधूतस्तोत्रम्

नित्यानन्दाय गुरवे शिष्यसंसारहारिणे।
भक्तकार्यैकदेहाय नमस्ते चित्सदात्मने ॥ १ ॥

शिष्यों के संसार-प्रपंच का हरण करनेवाले, केवल भक्तों के कारण ही सगुण देहधारी चित्स्वरूप, सत्स्वरूप और नित्य आनन्द स्वरूप नित्यानन्द गुरुदेव को नमस्कार है।

निर्वासनं निराकाङ्क्षं सर्वदोषविवर्जितम्।
निरालम्बं निरातङ्कंनित्यानन्दं नमाम्यहम् ॥ २ ॥

किसी भी वासना से रहित, जिनकी कोई इच्छा नहीं है, सभी दोषों से रहित, आलम्बनरहित, सर्व दुःखों से मुक्त श्रीनित्यानन्द गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

निर्ममं निरहङ्कारं समलोष्ठाश्मकाञ्चनम्।
समदुःखसुखं धीरं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ ३ ॥

जिनकी किसी भी पदार्थ पर ममता नहीं है, जो अहंकार रहित हैं, जिनकी दृष्टि में पत्थर, लोहा और सोना समान है, सुख-दुःख के द्वन्द्व में समतायुक्त, अत्यन्त धैर्यवाले अवधूत स्वामी नित्यानन्द को मैं नमस्कार करता हूँ।

अविनाशिनमात्मानं ह्येकं विज्ञाय तत्त्वतः।
वीतरागभयक्रोधं नित्यानन्दं नमाम्यहम् ॥ ४ ॥

एक अविनाशी आत्मा को जिन्होंने तात्त्विक रूप से जान लिया है जो राग-द्वेष-भय-क्रोध से रहित हैं, उन नित्यानन्द को मैं नमस्कार करता हूँ।

नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चित्।
एवं विज्ञाय सन्तुष्टं ह्यवधूतं नमाम्यहम्॥ ५॥

मैं देह नहीं हूँ, देह मेरी नहीं है, मैं जीव भी नहीं हूँ, मैं तो चित्स्वरूप हूँ, ऐसा जान कर जो सदा सन्तुष्ट हैं, ऐसे अवधूत नित्यानन्द भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ।

समस्तं कल्पनामात्रं ह्यात्मा मुक्तः सनातनः।
इति विज्ञाय सन्तृप्तं नित्यानन्दं नमाम्यहम्॥ ६॥

अन्य जो कुछ भी है, वह कल्पनामात्र है, आत्मा तो सदा-सर्वदा मुक्त और सनातन ही है, ऐसा जान कर जो तृप्त हैं, ऐसे नित्यानन्द भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ।

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं कामसङ्कल्पवर्जितम्।
हेयोपादेयहीनं तं ह्यवधूतं नमाम्यहम्॥ ७॥

ज्ञानरूपी अग्नि से जिन्होंने सब कर्मों को भस्म कर दिया है, कामना और संकल्प से जो रहित हैं, जिनके लिए कोई पदार्थ त्याज्य भी नहीं, एवं स्वीकार करने योग्य भी नहीं, ऐसे अवधूत नित्यानन्द भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ।

स्वभावेनैव यो योगी सुखं भोगं न वाञ्छति।
यदृच्छालाभसन्तुष्टं नित्यानन्दं नमाम्यहम्॥ ८॥

जो स्वभाव से ही योगी हैं, भोग-सुख की जिनको इच्छा भी नहीं होती और ईश्वरेच्छा से प्राप्त पदार्थों से जो सन्तुष्ट हैं, ऐसे गुरुदेव नित्यानन्द को मैं प्रणाम करता हूँ।

नैव निन्दाप्रशंसाभ्यां यस्य विक्रियते मनः।
आत्मक्रीडं महात्मानं ह्यवधूतं नमाम्यहम्॥ ९॥

किसी भी प्रकार की निन्दा और स्तुति से जिनके मन में विकार उत्पन्न नहीं होता, अपने आत्माराम में मस्त महान पुरुष नित्यानन्द अवधूत को मैं नमस्कार करता हूँ।

नित्यं जाग्रदवस्थायां स्वप्नवद् योऽवतिष्ठते।
निश्चिन्तं चिन्मयात्मानं नित्यानन्दं नमाम्यहम्॥ १०॥

जो जाग्रत-अवस्था में भी स्वप्न की तरह रहते हैं, अर्थात् बाह्य पदार्थों को स्वप्न के दृश्य के समान देखते हैं, किसी भी विषय के चिन्तन से मुक्त, चिन्मयस्वरूप नित्यानन्द भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

द्वेष्यं नास्ति प्रियं नास्ति नास्ति यस्य शुभाशुभम्।
भेदज्ञान-विहीनं तं ह्यवधूतं नमाम्यहम्॥ ११॥

जिनको किसी से द्वेष नहीं है और प्रीति भी नहीं है, जिनके लिए कोई शुभ भी नहीं और अशुभ भी नहीं, जो द्वैतज्ञान से रहित हैं, उन परम अवधूत को मैं नमस्कार करता हूँ।

जडं पश्यति नो यस्तु जगत्पश्यति चिन्मयम्।
नित्य-युक्तं गुणातीतं नित्यानन्दं नमाम्यहम्॥ १२॥

जो जगत के किसी पदार्थ को जड़ नहीं समझते, अपितु जगत को चिन्मयरूप में देखते हैं, जो नित्य योगी हैं और तीनों गुणों से परे हैं, उन नित्यानन्द भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

यो हि दर्शनमात्रेण पवते भुवनत्रयम्।
पावनं जङ्गमं तीर्थं ह्यवधूतं नमाम्यहम्॥ १३॥

जो दर्शनमात्र से तीनों लोकों को पवित्र करते हैं, सर्व पवित्र चलते-फिरते तीर्थस्वरूप अवधूत भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

सर्वपूज्यं सदा पूर्णं ह्यखण्डानन्दविग्रहम्।
स्वप्रकाशं चिदानन्दं नित्यानन्दं नमाम्यहम्॥ १४॥

सभी जनों के पूज्य, सर्वदा पूर्ण स्वरूप, अखण्ड आनन्द जिनका शरीर है, ऐसे स्वयंप्रकाशित चिदानन्दस्वरूप गुरुदेव नित्यानन्द को मैं नमस्कार करता हूँ।

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निर्मलं परमामृतम्।
गणेशपुरीवासिनं ह्यवधूतं नमाम्यहम्॥ १५॥

कलारहित, क्रियारहित, शान्त, निर्मल, परम अमृतरूप, गणेशपुरी में रहनेवाले अवधूत भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

योगपूर्णं तपोमूर्तिं प्रेमपूर्णं सुदर्शनम्।
ज्ञानपूर्णं कृपामूर्तिं नित्यानन्दं नमाम्यहम्॥ १६॥

सभी योगों से पूर्ण, साक्षात् तप की मूर्ति, प्रेममय, जिनका दर्शन आनन्ददायक है, ऐसे ज्ञान से पूर्ण, साक्षात् कृपा के अवतार नित्यानन्द भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

अन्नपूर्णास्तोत्रम्

नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिलघोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी।
प्रालेयाचलवंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी॥ १॥

[हे माता!] तुम सदा आनन्ददायिनी हो, मंगलमयी हो, अभयदायिनी हो, सौन्दर्य का सागर हो, सम्पूर्ण अमंगलों को धो कर पावन कर देनेवाली हो, महेश्वर की प्रत्यक्ष शक्ति हो, हिमालय के वंश को पावन कर देनेवाली हो, तुम काशीपुरी की अधिष्ठात्री देवी हो, कृपा का सहारा देनेवाली हो, तुम माता अन्नपूर्णेश्वरी हो, मुझे भिक्षा प्रदान करो।

नानारत्नविचित्रभूषणकरी हेमाम्बराडम्बरी
मुक्ताहारविलम्बमानविलसद्वक्षोजकुम्भान्तरी।
काश्मीरागरुवासिता रुचिकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी॥ २॥

[हे माता!] तुम नानाविध रत्नों के चित्र-विचित्र भूषणों को धारण करनेवाली हो, सुनहरे वस्त्रों को धारण करनेवाली हो, तुम्हारे वक्षस्थल पर मोतियों का हार शोभायमान है, केसर और अगरु के लेपन से सुवासित देह होने के कारण तुम रुचिकर लग रही हो, तुम काशीपुरी की अधिष्ठात्री देवी हो, कृपा का सहारा देनेवाली हो, तुम माता अन्नपूर्णेश्वरी हो, मुझे भिक्षा प्रदान करो।

योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्मार्थनिष्ठाकरी
चन्द्रार्कानलभासमानलहरी त्रैलोक्यरक्षाकरी।
सर्वैश्वर्यसमस्तवाञ्छितकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी॥ ३॥

तुम योग से उत्पन्न आनन्द को प्रदान करनेवाली हो, रिपुओं का संहार कर देनेवाली हो, धर्म और अर्थ में निष्ठा उत्पन्न कर देनेवाली हो, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि के समान दीप्तिमान स्वरूपवाली हो, त्रैलोक्य की रक्षा करनेवाली हो, सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के द्वारा समस्त वांछाओं की पूर्ति कर देनेवाली हो। तुम काशीपुरी की अधिष्ठात्री देवी हो, कृपा का सहारा देनेवाली हो, तुम माता अन्नपूर्णेश्वरी हो, मुझे भिक्षा प्रदान करो।

कैलासाचलकन्दरालयकरी गौरी उमा शङ्करी
कौमारी निगमार्थगोचरकरी ॐ कारबीजाक्षरी।
मोक्षद्वारकपाटपाटनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी॥ ४॥

कैलास पर्वत की कन्दराओं में निवास करनेवाली हो, तुम गौरी, उमा, शंकर की प्राणवल्लभा होने के कारण शंकरी हो, कौमारी हो, वेदों के अर्थ प्रकट कर देनेवाली हो, तुम बीजाक्षर ॐ कार हो, मोक्ष के कपाट खोल देनेवाली हो, तुम काशीपुरी की अधिष्ठात्री देवी हो, कृपा का सहारा देनेवाली हो, तुम माता अन्नपूर्णेश्वरी हो, मुझे भिक्षा प्रदान करो।

दृश्यादृश्यप्रभूतवाहनकरी ब्रह्माण्डभाण्डोदरी
लीलानाटकसूत्रभेदनकरी विज्ञानदीपाङ्कुरी।

श्रीविश्वेशमनःप्रसादनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ५ ॥

दृश्य तथा अदृश्य प्रचुर सम्पदाओं को धारण करनेवाली हो, ब्रह्माण्ड रूपी भाँड को अपने गर्भ में धारण करनेवाली हो, लीला रूपी नाटक के सूत्र का भेदन कर देनेवाली हो [अर्थात् मोक्ष प्रदायिनी हो], ज्ञान-विज्ञान रूपी प्रकाश को उद्दीप्त कर देनेवाली हो, श्रीविश्वेश्वर भगवान शंकर के चित्त को प्रसन्न कर देनेवाली हो, तुम काशीपुरी की अधिष्ठात्री देवी हो, कृपा का सहारा देनेवाली हो, तुम माता अन्नपूर्णेश्वरी हो, मुझे भिक्षा प्रदान करो।

उर्वी सर्वजनेश्वरी भगवती माताऽन्नपूर्णेश्वरी
वेणीनीलसमानकुन्तलहरी नित्यान्नदानेश्वरी।
सर्वानन्दकरी सदा शुभकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ६ ॥

तुम पृथ्वी के समान विशाल हो, समस्त प्राणियों की अधिष्ठात्री देवी भगवती हो, तुम अन्नपूर्णेश्वरी माता हो, वेणी के नील रत्न के समान घुँघराली केश-रचना से परिपूर्ण हो, नित्य अन्नदान करनेवाली महेश्वरी हो, सम्पूर्ण मानवता को आनन्द प्रदान करनेवाली हो, दुःस्थिति को शुभ स्थिति में बदल देनेवाली हो, तुम काशीपुरी की अधिष्ठात्री देवी हो, कृपा का सहारा देनेवाली हो, तुम माता अन्नपूर्णेश्वरी हो, मुझे भिक्षा प्रदान करो।

आदिक्षान्त-समस्तवर्णनकरी शम्भोस्त्रिभावाकरी
काश्मीरी त्रिजनेश्वरी त्रिलहरी नित्याङ्कुरी शर्वरी।

कामाकङ्क्षकरी जनोदयकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ७ ॥

अकार से क्षकार पर्यन्त समस्त वर्णों की रचना करनेवाली हो, भगवान शिव के तीनों भावों का कारण स्वरूप हो, तुम्हारी देह की वर्ण केसर के समान है, तुम तीनों लोकों की स्वामिनी हो, तीन लहरों के रूप में तीनों तत्त्वों से विभूषित हो, समस्त संसार की नित्य सृष्टि करनेवाली हो, तुम कालरात्रि [संसार का विलय करनेवाली] हो, कामना और आकांक्षाओं की पूर्ति कर देनेवाली हो, प्राणियों का अभ्युदय करनेवाली हो, तुम काशीपुरी की अधिष्ठात्री देवी हो, कृपा का सहारा देनेवाली हो, तुम माता अन्नपूर्णेश्वरी हो, मुझे भिक्षा प्रदान करो।

देवी सर्वविचित्ररत्नरचिता दाक्षायणी सुन्दरी
वामा स्वादुपयोधरप्रियकरी सौभाग्यमाहेश्वरी।
भक्ताभीष्ट करी दशाऽशुभहरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥ ८ ॥

तुम कान्तिमयी देवी हो, सम्पूर्ण चित्र-विचित्र रत्नों को धारण करनेवाली हो, दक्षकन्या दाक्षायिणी हो, अभिराम अंगो से युक्त सुन्दरी हो, तुम वामा हो [अर्थात् तुम्हारे अंग-प्रत्यंगों से आभा छिटक रही है] अथवा अर्द्धनारीश्वर मूर्ति का वाम भाग हो, उस वाम भाग में सुस्वादु पयोधर धारण करने के कारण मनोरम लग रही हो, सौभाग्य प्रदान करनेवाली महेश्वरी हो, भक्तों की अभीष्ट वांछाओं की पूर्ति कर देनेवाली हो, तुम दुःस्थिति को शुभस्थिति में बदल देनेवाली हो, तुम काशीपुरी की अधिष्ठात्री देवी हो, कृपा का सहारा देनेवाली हो, तुम माता अन्नपूर्णेश्वरी हो, मुझे भिक्षा प्रदान करो।

चन्द्रार्कानलकोटिसदृशी चन्द्रांशुबिम्बाधरी
चन्द्रार्काग्निसमानकुन्तलधरी चन्द्रार्कवर्णेश्वरी।
मालापुस्तकपाशसाङ्कुशधरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी॥ ९॥

कोटि-कोटि चन्द्रमा, सूर्य और अग्निओं के समान आभावाली हो, चन्द्र की किरणों के समान चमकीले और बिम्बफल के समान गुलाबी अधरवाली हो, चन्द्रमा और अग्नि के समान प्रभावाली केशराशि धारण करनेवाली हो, चन्द्रमा और सूर्य के समान वर्ण की अधीश्वरी हो, [तुम अपने हाथों में] माला, पुस्तक, पाश और अंकुश धारण कर रही हो, तुम काशीपुरी की अधिष्ठात्री देवी हो, कृपा का सहारा देनेवाली हो, तुम माता अन्नपूर्णेश्वरी हो, मुझे भिक्षा प्रदान करो।

क्षत्रत्राणकरी महाऽभयकरी माता कृपासागरी
साक्षान्मोक्षकरी सदा शिवकरी विश्वेश्वरी श्रीधरी।
दक्षाक्रन्दकरी निरामयकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी॥ १०॥

तुम क्षत्रियों को त्राण प्रदान करनेवाली हो, महा अभय प्रदान करनेवाली हो, तुम कृपा के सागर से परिपूर्ण माता हो, साक्षात् मोक्षप्रदायिनी हो, सदा मंगलदायिनी हो, भगवान विश्वेश्वर की शोभाधारिणी हो, प्रजापति दक्ष का गर्व चूर कर देनेवाली हो, आरोग्यदायिनी हो, तुम काशीपुरी की अधिष्ठात्री देवी हो, कृपा का सहारा देनेवाली हो, तुम माता अन्नपूर्णेश्वरी हो, मुझे भिक्षा प्रदान करो।

अन्नपूर्णे सदा पूर्णे शङ्करप्राणवल्लभे।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति॥ ११॥

हे अन्नपूर्णा! हे सदा परिपूर्ण रहनेवाली! हे भगवान शंकर की प्राण-वल्लभा! ज्ञान तथा वैराग्य की सिद्धि के लिए हे पार्वती! तुम मुझे भिक्षा प्रदान करो।

माता मे पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः।
बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्॥१२॥

मेरी माता पार्वती देवी हैं और पिता भगवान महेश्वर हैं। उनके सम्पूर्ण भक्तजन मेरे बन्धु-बान्धव हैं और तीनों लोक मेरे देश हैं।

कुण्डलिनीस्तवः

जन्मोद्धारनिरीक्षणीह तरुणी वेदादिबीजादिमा
नित्यं चेतसि भाव्यते भुवि कदा सद्वाक्यसञ्चारिणी।
मां पातु प्रियदासभावकपदं सङ्घातये श्रीधरा
धात्रि त्वं स्वयमादिदेववनिता दीनातिदीनं पशुम्॥ १॥

श्री कुल कुण्डलिनी अपने भक्तों को जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति दिलाने के लिए सदैव अवसर खोजती हैं। वे शाश्वत तरुणी हैं। वे वेदों, अन्य शास्त्रों और बीजाक्षरों की स्रोत हैं। इस संसार में योगीजन मन द्वारा उनका बोध प्राप्त करते हैं। कभी-कभी वे सन्तों के सद्वचनों द्वारा संचारित होती हैं। वे मंगलमयी, मेरी रक्षा करें जिससे मैं दिव्य एकात्म प्राप्त कर सकूँ। मैं ऐसा समझता हूँ कि मैं उनके प्रिय दास के स्थान पर हूँ। हे माँ, आप स्वभाव से ही आदिदेव शिव की संगिनी हैं और मैं दीनातिदीन बद्धजीव हूँ।

रक्ताभामृतचन्द्रिका लिपिमयी सर्पाकृतिर्निद्रिता
जाग्रत्कूर्मसमाश्रिता भगवति त्वं मां समालोकय।
मांसोद्गन्धकुगन्धदोषजडितं वेदादिकार्यान्वितं
स्वल्पस्वामलचन्द्रकोटिकिरणैर्नित्यं शरीरं कुरु॥ २॥

कुल कुण्डलिनी लाल रंग की आभा से युक्त हैं। वे अमृतमयी चाँदनी हैं। वे वर्णों का स्वरूप हैं। वे सर्पाकार हैं और निद्रा में हैं। हे भगवती, आप जो [मनुष्य की] जाग्रत अवस्था में कूर्म नाड़ी में निवास करती हैं, कृपया मेरी ओर दृष्टि करें। मेरा शरीर निरन्तर वैदिक और अन्य अनुष्ठानों में लगा रहता है और माँस से उत्पन्न होनेवाली दुर्गन्ध के दोष

से युक्त है। हे देवी, इस शरीर को अपनी कोटि-कोटि चन्द्रकिरणों के छोटे-से भाग के स्पर्श से शाश्वत बना दें।

सिद्धार्थी निजदोषवित्स्थलगतिर्व्याजीयते विद्यया
कुण्डल्या कुलमार्गमुक्तनगरी मायाकुमार्गः श्रिया।
यद्येवं भजति प्रभातसमये मध्याह्नकालेऽथवा
नित्यं यः कुलकुण्डली जपपदाम्भोजं स सिद्धो भवेत्॥ ३॥

जो पूर्णत्व चाहता है और अपने दोषों को जानता है, श्रीकुण्डलिनी के ज्ञान से पृथ्वी पर रहते हुए विजयी होता है। इन मंगलमयी देवी [श्री] की कृपा से माया का असत्य मार्ग कुल कुण्डलिनी का मार्ग बन जाता है और मुक्ति की नगरी तक पहुँचा देता है। यदि कोई प्रातःकाल या मध्याह्न काल में नियमित रूप से कुल कुण्डलिनी के पाठरूपी चरण-कमलों की आराधना करता है तो वह साधना में सफल होता है।

वाय्वाकाशचतुर्दलेऽतिविमले वाञ्छाफलोन्मूलके
नित्यं सम्प्रति नित्यदेहघटिता सङ्केतिता भाविता।
विद्या कुण्डलमानिनी स्वजननी माया क्रिया भाव्यते
यैस्तैः सिद्धकुलोद्भवैः प्रणतिभिः सत्स्तोत्रकैः शम्भुभिः॥ ४॥

हे महापवित्रे! हे कामनाओं के फलों को जड़ से नष्ट करनेवाली! [योगीजन] सदैव उचित रीति से आपके शाश्वत प्रतीकात्मक सर्पाकार रूप का, मूलाधार के चतुर्दल कमल पर, ध्यान करते हैं जहाँ वायु और आकाश हैं। जो पूज्या कुण्डला का चिन्तन नमस्कारों से तथा ऐसे कल्याणकारी स्तोत्रों द्वारा करते हैं, जिनका उद्भव सिद्धकुल से हुआ है, वे मुक्त हो जाते हैं। देवी कुण्डलिनी ज्ञान हैं।

देवी कुण्डलिनी स्वयं में से उत्पन्न हैं। वे माया [मोहकारिणी शक्ति] तथा क्रिया [कार्यशक्ति] हैं।

धाताशङ्करमोहिनी त्रिभुवनच्छायापटोद्गामिनी
संसारादिमहासुखप्रहरणी तत्र स्थिता योगिनी।
सर्वग्रन्थिविभेदिनी स्वभुजगा सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परा
ब्रह्मज्ञानविनोदिनी कुलकुटी व्याघातिनी भाव्यते॥ ५॥

मूलाधार में स्थित वे योगिनी ब्रह्मा और शिव को भी सम्मोहित कर लेती हैं। वे तीनों लोकों की छाया के पर्दे को हटा देती हैं, भासमान सांसारिक महासुखों का नाश करती हैं और समस्त अन्तर-ग्रन्थियों को भेद देती हैं। वे स्वयं ही सर्परूप धारण करती हैं। वे सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्म हैं। वे ब्रह्मज्ञान में विलास करनेवाली परा शक्ति हैं। वे शरीर में निवास करनेवाली तथा सांसारिक बन्धनों पर आघात करनेवाली के रूप में जानी जाती हैं।

वन्दे श्रीकुलकुण्डलीं त्रिवलिभिः साङ्गैः स्वयम्भूप्रियां
प्राविष्टाम्बरमारचित्तचपलां बालाबलानिष्कलाम्।
या देवी परिभाति वेदवदना सम्भावनी तापिनी
इष्टानां शिरसि स्वयम्भुवनितां सम्भावयामि क्रियाम्॥ ६॥

मैं श्री कुल कुण्डलिनी को नमन करता हूँ। वे स्वयम्भू की प्रिया हैं और उन्हें अपने समस्त सहचरों के साथ तीन घेरों में लपेटे हुए हैं। वे सहस्रार [चिदाकाश] में प्रवेश करती हैं और एक प्रेमोन्मत्त मन की तरह सक्रिय हो जाती हैं। वे तरुणी हैं, सबला हैं, सम्पूर्ण हैं। वे देदीप्यमान वेदमुखी देवी अपने भक्तों के लिए सब कुछ प्राप्त कराती हैं और जो उनसे विमुख हो जाते हैं, उन्हें सुधारती हैं। मैं उन स्वयम्भू

की पत्नी की वन्दना करता हूँ जो अपने इष्टगण के साथ शीर्ष के मध्य में, सहस्रार में, विलास करती हैं। वे क्रिया शक्ति हैं।

वाणीकोटिमृदङ्गनादमदना निश्रेणिकोटिध्वनिः
प्राणेशी रसराशिमूलकमलोल्लासैकपूर्णानना।
आषाढोद्भवमेघराजिजनितध्वान्तानना स्थायिनी
माता सा परिपातु सूक्ष्मपथगा मां योगिनां शङ्करी॥७॥

वे मृदंग का मादक नाद हैं और समस्त मन्त्रों व करोड़ों [भक्तों के] संगीतमय स्वरों की गूँज हैं। वे प्राणेश्वरी हैं। आनन्ददायी अमृत-सागर में जिसकी जड़ें स्थित हैं, ऐसे खिले हुए कमल के समान उनका मुख उल्लासपूर्ण है। आषाढ़ मास [वर्षा का महीना] में छानेवाली मेघराशि से उत्पन्न अन्धकार के समान उनका मुख श्यामल है। वे सभी का अवलम्ब हैं। सुषुम्ना के सूक्ष्म पथ पर विचरण करनेवाली वे माता हर ओर से मेरी रक्षा करें। वे योगियों का कल्याण करनेवाली हैं।

त्वामाश्रित्य नरा व्रजन्ति सहसा वैकुण्ठकैलासयोर्
आनन्दैकविलासिनीं शशिशतानन्दाननां कारणाम्।
मातः श्रीकुलकुण्डलीप्रियकले कालीकलोद्दीपने
तत्स्थानं प्रणमामि भद्रवनिते मामुद्धर त्वं पशुम्॥८॥

हे माँ, आपका आश्रय पा कर लोग तत्काल वैकुण्ठ [विष्णु के धाम] तथा कैलास [शिव के धाम] पहुँच जाते हैं। आप केवल आनन्द में ही विलास करती हैं। आपके मुख से सैकड़ों चन्द्रमाओं का उल्लास व्यक्त होता है। आप सबका मूल कारण हैं। हे माँ, शक्ति की परमप्रिय प्रकट रूप, हे श्री कुल कुण्डलिनी, हे शक्ति के काली रूप

को प्रकाशित करनेवाली, हे कल्याणी! मैं आपके उस निवास-स्थान, मूलाधार को प्रणाम करता हूँ। मुझ बद्धजीव का उद्धार कीजिए।

कुण्डलीशक्तिमार्गस्थः स्तोत्राष्टकमहाफलम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स योगी भवति ध्रुवम्॥ ९॥

कुण्डलिनी शक्ति के पथ पर चलते हुए यदि कोई इस महाफलदायी स्तोत्राष्टक का पाठ प्रातः उठ कर करता है, तो वह योगी दृढ़ता प्राप्त करता है।

क्षणादेव हि पाठेन कविनाथो भवेदिह।
पवित्रः कुण्डलीयोगी ब्रह्मलीनो भवेन्महान्॥ १०॥

इस स्तोत्र के पाठ से, निश्चय ही क्षण भर में वह कवियों का स्वामी हो जाता है। कुण्डलिनी योग का अभ्यास करनेवाला योगी पवित्र और महान बन जाता है और ब्रह्म के साथ एक हो जाता है।

इति ते कथितं नाथ कुण्डलीकोमलं स्तवम्।
एतत् स्तोत्रप्रसादेन देवेषु गुरुगीष्पतिः॥ ११॥

हे प्रभु! इस प्रकार मैंने आपके समक्ष यह सुन्दर कुण्डलिनीस्तवः गाया। इस स्तोत्र के प्रसाद से मनुष्य देवताओं के गुरु के समान विद्वान हो जाता है।

सर्वे देवाः सिद्धियुता अस्याः स्तोत्रप्रसादतः।
द्विपरार्धं चिरञ्जीवी ब्रह्मा सर्वसुरेश्वरः॥ १२॥

उनके स्तोत्र के प्रसाद से सब देवताओं को सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और सभी देवों के देव, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा असंख्य युगों तक जीवित रहते हैं।

निर्वाणषट्कम्

मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तानि नाहं
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायु-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥ १॥

मैं मन नहीं हूँ और न मैं बुद्धि, अहंकार या चित्त ही हूँ। मैं न श्रोत्र हूँ और न जिह्वा, न नासिका या नेत्र हूँ। मैं आकाश नहीं हूँ और वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी भी नहीं हूँ। मैं चिदानन्द-रूप हूँ। मैं शिव हूँ; मैं शिव हूँ।

न च प्राणसंज्ञो न वै पञ्चवायु-
र्न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोशः।
न वाक्पाणिपादं न चोपस्थपायू
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥ २॥

मैं प्राण-संज्ञा नहीं हूँ, मैं पंचवायु नहीं हूँ। मैं सप्तधातु नहीं हूँ और न पंचकोश ही हूँ। मैं हाथ-पाँव, वाणी, गुदा या जननेन्द्रिय भी नहीं हूँ। मैं चिदानन्द-रूप हूँ। मैं शिव हूँ; मैं शिव हूँ।

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥ ३॥

मुझमें न द्वेष है, न राग; न लोभ, न मोह; न मद है, न मत्सर। मुझमें धर्म नहीं है, अर्थ भी नहीं है। न इच्छा है, न मोक्ष ही है। मैं चिदानन्द-रूप हूँ। मैं शिव हूँ; मैं शिव हूँ।

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ४ ॥

मैं न पुण्य हूँ, न पाप हूँ; न सुख हूँ, न दुःख हूँ। मैं मन्त्र नहीं हूँ, मैं तीर्थ नहीं हूँ। मैं वेद नहीं हूँ, यज्ञ भी नहीं हूँ। मैं न भोजन हूँ, न भोजन का कर्म हूँ और न भोजन करनेवाला हूँ। मैं चिदानन्द-रूप हूँ। मैं शिव हूँ; मैं शिव हूँ।

न मृत्युर्न शङ्का न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता च जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ५ ॥

मेरे लिए न मृत्यु है, न शंका है; न जाति-भेद है, न माता-पिता हैं। मेरे लिए जन्म नहीं है। मैं बन्धु नहीं हूँ, मित्र नहीं हूँ, गुरु नहीं हूँ, शिष्य नहीं हूँ। मैं चिदानन्द-रूप हूँ। मैं शिव हूँ; मैं शिव हूँ।

अहं निर्विकल्पो निराकार-रूपो
विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्।
न चासंगतं नैव मुक्तिर्न मेय-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ६ ॥

मैं विचारहीन हूँ; आकारहीन हूँ। सर्वशक्तिमान हूँ, सर्वत्र हूँ। सभी इन्द्रियों के परे, सबसे अलिप्त हूँ। मेरे लिए मुक्ति भी कुछ नहीं है। मैं चिदानन्द-रूप हूँ। मैं शिव हूँ; मैं शिव हूँ।

आरती लीजो

आरती लीजो, अज अविनाशी,
पूरण नित्यानन्द प्रकाशी,
पूरण मुक्तानन्द प्रकाशी।

नभ और धरणी आरती थाला,
चन्द्र सूरज दोऊ दीप उजाला,
अगर चन्दन सब धूप बिराजे,
झूला मेरन चँवर तरन राशी ॥ १ ॥

फूल वनस्पति हैं ये सारी,
सातों सागर जल की झारी,
गगन अनाहत बाजे बाजे,
गाजे राग डरे यम पाशी ॥ २ ॥

चार प्रकार के अन्न गोपाला,
सोई तेरो भोग रसाला,
लोक चतुर्दिश मन्दिर तेरो,
घट-घट आसन स्वयंविकाशी ॥ ३ ॥

महावाक्य वेदन के जो हैं
सो तेरो चरणामृत सो हैं,
सद्गुरु पुजारी देवचरणामृत,
पिये नारी नर बंध विनाशी ॥ ४ ॥

प्रार्थना

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥

जो मनुष्य दुर्जन है, वह सज्जन बने। सज्जन मनुष्य को शान्ति प्राप्त हो। शान्त मनुष्य जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो और मुक्त पुरुष अन्य जनों को मुक्त करे।

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु॥

प्रजाओं का कल्याण हो और राजा अथवा नेतागण न्याय के मार्ग से पृथ्वी का पालन करें। गौओं एवं ब्राह्मणों का नित्य मंगल हो। सभी लोग सुखी हों।

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी शस्यशालिनी।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥

समय पर मेघ बरसे, पृथ्वी धन-धान्य से पूर्ण हो, देश किसी भी प्रकार के उद्वेग से रहित हो और ब्राह्मण-समुदाय भयरहित बने।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी लोग सर्वत्र कल्याण को देखें, किसी को भी कभी दुःख न हो।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु॥

सभी दुर्ग की तरह खड़ी बाधाओं को पार कर लें, सभी मंगल को देखें। सभी की कामनाएँ परिपूर्ण हों, सभी सर्वत्र आनन्द प्राप्त करें।

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु
स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु
ज्योगेव दृशेम सूर्यम्॥

हमारे माता और पिता का कल्याण हो, गायों का कल्याण हो, जगत के सभी मनुष्यों का मंगल हो। यह विश्व हमारे लिए दिव्य समृद्धिवाला बने। हम अपने अन्तर्यामी आत्मरूपी सूर्य को देखें।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

श्रीमहालक्ष्म्यष्टकम् स्तोत्रम्

श्री गुरुभ्यो नमः। श्री शुभ। श्री लाभ। श्री गणेशाय नमः।
श्री गुरुदेव को नमस्कार। श्री शुभ। श्री लाभ। श्री गणेशाय नमः।

श्रीमहालक्ष्म्यष्टकम् स्तोत्रम्

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते।
शंखचक्रगदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ १॥

सौभाग्य की आधार, देवताओं द्वारा पूजित महामाया, जिन्होंने हाथों में शंख, चक्र, गदा धारण कर रखे हैं, उन महालक्ष्मीजी को नमस्कार है।

नमस्ते गरुडारूढे कोलासुरभयंकरि।
सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ २॥

कोलासुर दैत्य को भय देनेवाली, गरुड़ पर विराजमान, सारे पापों का नाश करनेवाली महालक्ष्मीजी को नमस्कार है।

सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयंकरि।
सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ३॥

जो सब कुछ जाननेवाली हैं, जो सबको वरदान देनेवाली हैं तथा सब दुष्टों के लिए भयदायक हैं। सम्पूर्ण दुखों का नाश करनेवाली महालक्ष्मीजी को नमस्कार है।

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि।
मन्त्रमूर्ते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ४॥

जो देवी सर्वदा सिद्धि, बुद्धि, सांसारिक भोग तथा मोक्ष दोनों को देनेवाली हैं उन साक्षात् मन्त्रस्वरूपिणी महालक्ष्मीजी को नमस्कार है।

आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्ति महेश्वरि।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ५॥

जिन महादेवी का न आदि है न अन्त है, जो विश्व की आदिशक्ति हैं तथा जो केवल योगज्ञान के द्वारा जानी जा सकती हैं व योगज्ञान के द्वारा ही प्रकट होती हैं उन महालक्ष्मीजी को नमस्कार है।

स्थूलसूक्ष्ममहारौद्रे महाशक्ति महोदरे।
महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ६॥

जो स्थूल हैं फिर भी सूक्ष्म हैं तथा महाभीषण भी हैं। सबको अपने अन्दर धारण करनेवाली महान शक्ति स्वरूपिणी, महान पातकों को नष्ट करनेवाली महालक्ष्मीजी को नमस्कार है।

पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ७॥

जो कमल के आसन पर विराजित हैं, साक्षात् परमात्मा का स्वरूप हैं, परमशक्तिमती हैं तथा जो सम्पूर्ण विश्व की माता हैं, उन महालक्ष्मीजी को नमस्कार हैं।

श्वेताम्बरधरे देवि नानालङ्कारभूषिते।
जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ८॥

जो श्वेत वस्त्रों को धारण करती हैं, अनेक प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित हैं, जो विश्व को धारण करनेवाली हैं तथा जो सम्पूर्ण विश्व की माता हैं, उन महालक्ष्मीजी को नमस्कार है।

महालक्ष्म्यष्टकंस्तोत्रं यः पठेद्भक्तिमान्नरः।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति राज्यं प्राप्नोति सर्वदा॥ ९ ॥

जो व्यक्ति इस महालक्ष्मी अष्टक नामक स्तोत्र का भक्ति सहित पाठ करता है उसे सर्वदा सम्पूर्ण सिद्धियों की तथा राज्य की प्राप्ति होती है।

एककाले पठेन्नित्यं महापापविनाशनम्।
द्विकालं यः पठेन्नित्यं धनधान्यसमन्वितः॥ १० ॥

जो व्यक्ति इस स्तोत्र का नित्य एक समय पाठ करता है उसके महापाप भी नष्ट हो जाते हैं, जो नित्य दो समय पाठ करता है वह धन से तथा धान्य से परिपूर्ण हो जाता है।

त्रिकालं यः पठेन्नित्यं महाशत्रुविनाशनम्।
महालक्ष्मीर्भवेन्नित्यं प्रसन्ना वरदा शुभा॥ ११ ॥

जो व्यक्ति नित्य तीनों समय [प्रातः, मध्याह्न तथा सन्ध्या] इसका पाठ करता है उसके महाशत्रुओं का नाश हो जाता है, उस पर महालक्ष्मीजी सदा प्रसन्न रहती हैं तथा अनेक शुभ वरदान प्रदान करती हैं।

॥ इतीन्द्रकृतं महालक्ष्म्यष्टकं सम्पूर्णम्॥

इन्द्र द्वारा विरचित महालक्ष्मी अष्टक सम्पूर्ण॥

पसायदान

आतां विश्वात्मकें देवें। येणें वाग्यज्ञें तोषावें।
तोषोनि मज द्यावें। पसायदान हें॥

जे खळांची व्यंकटी सांडो। तयां सत्कर्मी रति वाढो।
भूतां परस्परें पडो। मैत्र जीवाचें॥ १॥

दुरितांचें तिमिर जावो। विश्व स्वधर्मसूर्यें पाहो।
जो जें वांछील तो तें लाहो। प्राणिजात॥ २॥

वर्षत सकळमंगळीं। ईश्वरनिष्ठांची मांदियाळी।
अनवरत भूमंडळीं। भेटतु भूतां॥ ३॥

चलां कल्पतरूंचे आरव। चेतनाचिंतामणींचे गांव।
बोलते जे अर्णव। पीयूषाचे॥ ४॥

चंद्रमे जे अलांछन। मार्तंड जे तापहीन।
ते सर्वांही सदा सज्जन। सोयरे होतु॥ ५॥

किंबहुना सर्वसुखी। पूर्ण होऊनि तिहीं लोकीं।
भजिजो आदिपुरुषीं। अखंडित॥ ६॥

आणि ग्रंथोपजीविये। विशेषीं लोकीं ईयें।
दृष्टादृष्टविजयें। होआवें जी॥ ७॥

येथे म्हणे श्रीविश्वेश्वरावो। हा होईल दानपसावो।
येणें वरें ज्ञानदेवो। सुखिया झाला॥ ८॥

अब समस्त विश्व की आत्मा वे परमेश्वर इस वाङ्मय यज्ञ से सन्तुष्ट हो कर मुझे केवल इतना ही प्रसाद प्रदान करें कि दुष्टों की टेढ़ी दृष्टि सीधी हो जाये। उनके हृदय में सत्कर्मों के प्रति प्रेम उत्पन्न हो और भूत मात्र में परस्पर हार्दिक मैत्री हो। पापों का अन्धकार नष्ट हो और आत्मज्ञान के प्रकाश से सारा विश्व उज्ज्वल हो; और अब जो प्राणी जिस बात की इच्छा करें, वह उन्हें प्राप्त हो। समस्त मंगलों की वर्षा करनेवाले सन्त सज्जनों का जो समुदाय है, उसकी इस भूतल के भूतमात्र के साथ अखण्ड भेंट हो। ये सन्त सज्जन मानों चलते-फिरते कल्पवृक्षों के अंकुर हैं अथवा इन्हें चैतन्य रूपी चिन्ता-रत्न का ग्राम अथवा अमृत का बोलता हुआ सागर ही समझना चाहिए। ये सन्तजन मानों कलंकहीन चन्द्रमा अथवा तापहीन सूर्य हैं और सभी लोगों के सदा के सगे-सम्बन्धी और अपने हैं। सारांश यही कि तीनों भुवन अद्वैत-सुख से परिपूर्ण हो कर अखण्ड रूप से उस आदि पुरुष के भजन में लगें और विशेषतः इस लोक में जो ऐसे जीव हैं जिनका जीवन शास्त्रग्रन्थों के अध्ययन पर अवलम्बित रहता है, उन्हें ऐहिक तथा पारलौकिक सुखों की प्राप्ति हो। यह सुनते ही विश्वेश्वर प्रभु ने कहा—"यह प्रसाद तुम्हें दिया जाता है।" यह वरदान प्राप्त करके ज्ञानदेव बहुत प्रसन्न हुए हैं।

2525110

प्रकाशक : चित्शक्ति® पब्लिकेशन्स, चेन्नई